ॐ

शान्ति-सन्देश

वर्ष—७ जनवरी—१९५८ अंक—१

द्वितीय दिवस का अपराह्नकालिक प्रवचन] [दिनाङ्क—२६-११-'५५

सत्संग सुधा

"सुरत बांधि सुस्थिर करो, आठो पहर हजूर"।

पूज्य स्वामी मेंहीं दास जी महाराज

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मेरे कहने का विषय ईश्वर-भक्ति है। ईश्वर-भक्ति के लिये पहले ईश्वर का स्वरूप ठीक से जानना चाहिये। ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना उसी तरह चलियेगा, जिस तरह किसी को निर्दिष्ट स्थान मालूम नहीं हो और वह चलता हो। ईश्वर का स्वरूप इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। इन्द्रिय-ज्ञान में जो आते हैं वे किसी न किसी तरह नाशवान हैं। तुलसीकृत रामायण में लक्ष्मण के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री राम कहते हैं—

'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।'

इन्द्रियों को जो कुछ प्रत्यक्ष है, सब माया है। दूसरी बात यह याद कीजिये कि अपने राजत्वकाल में श्री राम ने प्रजा को बुलाकर अध्यात्मज्ञान की शिक्षा दी थी। श्री राम के राज्य को लोग आज भी बहुत अच्छा कहते हैं। अत्युत्तम राजनीति बनाकर प्रजा को सुखी करना श्री राम का काम था। उन्होंने विचार किया कि प्रजा इस संसार में तो सुखी है ही, शरीर छूटने के बाद भी सुखी रहे, दुःखी न हो, इसलिये प्रजा को बुलाकर शिक्षा दी। एक बात और हुई होगी कि श्री राम तो राजनीतिज्ञ थे। राजनीतिज्ञ ही नहीं, वे राजनितिज्ञों के आचार्य थे। जो बातें तुलसीकृत रामायण या वाल्मीकि रामायण में अयोग्य जँचती हैं, हो सकता है वे क्षेपक हों। श्री राम ने सोचा होगा कि प्रजा को ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि जिससे वह इसलोक और परलोक दोनों में सुखी रहे। लोग समझते हैं कि अर्थहीन बहुत दुःखी होता है। गो० तुलसीदास जी ने कहा है—'नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं।' लोग अर्थ के लालच के कारण ही डकैती, बटमारी और लूट आदि किया [illegible]
में लिखा है—

"महाराजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों को सोने की थाली में भोजन करवाते थे। एक दिन गिनती में एक थाली कम गयी। खोज-ढूँढ़ के पश्चात् मालूम हुआ कि अमुक ब्राह्मण उस थाली को चुराकर ले गया है। युधिष्ठिर असमंजस में पड़ गये कि मैं क्षत्रिय होकर इस ब्राह्मण को चौर-कर्म की अपराध में कैसे दंड दूँ? और यदि दंड नहीं देता हूँ तो राज्य में चोरों की संख्या अधिक हो जायगी। तब प्रजा सुखपूर्वक नहीं रह सकेगी —दुःखी हो जायगी। भगवान् श्रीकृष्ण से विचार-विमर्श करने पर भगवान् ने राजा बलि के यहाँ जाकर इसका न्याय पूछने की आज्ञा दी। भगवान् के सहित महाराजा युधिष्ठर राजा बलि के यहाँ गये। राजा बलि के पूछने पर महाराजा युधिष्ठिर ने अपने जाने का कारण बतलाया। राजा बलि बोले— "धनाभाव के कारण ही प्रजा चोरी करती है। तुम पूरा धन देकर प्रजा को सुखी नहीं कर सके, इसीलिये तुम्हारे राज्य में चोरी होती है। यह तुम्हारा दोष है, तुम अपनी प्रजा को पूरा धन देकर सन्तुष्ट कर दो, फिर चोरी नहीं होगी।" राजा लोग ऐसाही करते थे कि प्रजा को पूरा धन दे दिया करते थे, जिससे वे चोरी-डकैती आदि नहीं करते थे। लोग झूठ बोलकर, धोखा देकर, किसी न किसी तरह ठगकर पैसा खींच लेते हैं। यह सब तो आप लोग जानते हैं। गैरवाजिब नहीं लेना चाहिये। कबीर साहब के समान खरा निर्लोभी होना चाहिए। उनका एक दोहा सुनिये—

"कबीर चाले हाट को, कहै न कोइ पतियाय।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय॥"

एक कहानी है कि एक बार कबीर साहब एक दुपट्टा लेकर बाजार में बेचने गये। लोगो के पूछने पर उन्होंने ... रुपये बतलाये। लोग उनसे साढ़े तीन रुपये या चार रुपये उसका मूल्य कहने लगे। कबीर साहब ने कहा– "भाई! मैं मोलाई करना नहीं जानता, इसके मूल्य पाँच रुपये हैं।" सन्ध्या हो चली, किन्तु दुपट्टा नहीं बिका। लाचार होकर वे उस दुपट्टे को लेकर अपने घर की ओर चले। रास्ते में एक चालाक व्यक्ति से उनकी भेंट हुई। उन्होंने पूछा— 'कबीर साहब! क्या दुपट्टा नहीं बिका?' कबीर साहब बोले— "नहीं, भाई! मैं पाँच रुपये मांगता था और लोग इसका मूल्य साढ़े तीन रुपये या चार रुपये तक कहते थे।" उस चालाक व्यक्ति ने कहा– "यह दुपट्टा आप मुझे दे दीजिये, मैं इसे बेचकर आप को पाँच रुपये दे दूँगा। किन्तु पाँच रुपये से विशेष जो होगा उसे मैं ले लूंगा।" कबीर साहब ने कहा— "भाई मुझे तो पाँच रुपये ही चाहिये।" वह चालाक व्यक्ति उस दुपट्टे को लेकर बाजार गया और उसका मूल्य आठ रुपये सुनाने लगा। किसी ने सात रुपये देकर उस दुपट्टे को ले लिया। वह चालाक व्यक्ति कबीर साहब को पाँच रुपये देकर कहा— "देखो, दो रुपये मुझे नफा में मिले।" इसीके लिये वह उपर्युक्त दोहा लोग कहा करते हैं— "कबीर चाले हाट को..."

यदि कबीर साहब के समान कोई सब्रदार और सन्तोषी है, तो उसका भी गुजर हो जाता है और जनता की निगाह में वह प्रतिष्ठा का पात्र गिना जाता है। किन्तु ऐसे आदमी कम होते हैं। लालची की आँखें संसार भर की दौलत से उसी तरह नहीं भरती जिस तरह ओस से कुआँ नहीं भरता। चाहे जैसे भी हो धन कमा लो, यह ठीक नहीं। चोर-डकैत तो पहले यहीं पर पीटे जाते हैं और कचहरी में कैद भी होते हैं। यहाँ सांसारिक सुखों में ऐसी ही बातें होती हैं। धन-

(शेषांश पृष्ठ १६ पर)

'राह बारीक गुरुदेव तें पाइये'

पूज्य स्वामी मेंहीं दास जी महाराज

सबलोग जानते हैं कि शरीर नाशवान है। भगवान बुद्ध के कहे अनुकूल इस शरीर की हड्डियाँ कभी न कभी भूमि पर बिखरी हुई देखी जायँगीं। फिर इस शरीर में इतनी आसक्ति कि शरीर सुख के लिये ही जीयें, यह योग्य नहीं। शरीर से मुक्त होने की इच्छा हो, यही योग्य है। इच्छा होने पर प्रबल प्रयास भी हो। मुक्त होने के लिये संसार में कहीं मार्ग नहीं है, स्थूल मंडल में कहीं विचरना नहीं है। इसके लिये सूक्ष्म मार्ग है। सूक्ष्म मार्ग पर शरीर नहीं चलेगा, मनचलेगा। वह सूक्ष्म मार्ग इतना सूक्ष्म है कि उसको तलवार की धार और बाल की नोंक के समान कहा है। संतों ने इसको भीना मार्ग कहा है। इस पर चेतन आत्मा के सहित मन चलता है। जबतक दोनों पृथक-पृथक नहीं हुए हैं, तबतक ऐसे मिले हैं जैसे घी और दूध। साधन के द्वारा इन दोनों को भक्त-योगी अलग-अलग करता है। कुछ दूर तक मन साथ रहता है, फिर मन छूट जाता है। इसी अवस्था के लिये योगी सचेष्ट रहता है और ध्यान करता है। यह मार्ग सब के अन्दर है और गुरु-कृपा से जाना जाता है। इसका रास्ता वहाँ से आरम्भ होता है जहाँ मन की बैठक है। वह है नयनाकाश के मध्य में, आज्ञाचक्र में। उसको शिवनेत्र भी कहते हैं। जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलता है। इसलिये शिवनेत्र—आज्ञाचक्र—से ही चलना होगा। गुरु इसकी युक्ति बता देते हैं कि किस तरह चलना होगा। मनका चलना वैसा नहीं होता जैसा लोग समझते हैं। आँख से जिस स्थान को किसीने देखा है, मानस-चित्र में वह उसको देखता है। इस तरह का जाना, असली स्थान पर जाना नहीं है। मानस-चित्र सम्बन्धी असली स्थान पर जब कोई जायगा, तब वहाँ उस समय जो होता रहेगा, वह प्रत्यक्ष देखेगा, जो केवल मानस चित्र में विदित नहीं हो पाता। केवल ख्याली पोलाव से पेट नहीं भरता। कल्पना नहीं, वास्तविकता चाहिए। वास्तविकता की ओर ले जानेवाला मार्ग सूक्ष्म है। सूक्ष्म मार्ग क्या है? कैसे और किससे पता लगेगा इस मार्ग का? निवेदन है—

"गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नाहीं,
समुझि विचारि ले मने [illegible]॥
राह बारीक गुरुदेव तें [illegible]
जनम अने [illegible]

कहै कबीर गुरुदेव पूरण मिलै,

जीव और सीव तब एक तोलै ॥"

'राह बारीक' सूक्ष्म मार्ग को कहते हैं। यह सूक्ष्म मार्ग आज्ञाचक्र से आरम्भ होता है। मार्ग का कहीं से आरम्भ होता है, वह किसी दूरी तक होता है और सम्भवतः उस दूरी में यत्र-तत्र स्थान भी होते हैं।

"लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।

कहो सन्तों क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ॥"

इस मार्ग का खुलासा यह है कि आरम्भ अंधकार से होता है और फासले के बीच में अंधकार, प्रकाश और शब्द के स्थान हैं और अनाम या शब्दातीत पद तक यह मार्ग है। आप अंधकार प्रत्यक्ष देखते हैं, इसके बाद प्रकाश है। प्रत्येक की आँख में ज्योति है और उस ज्योति का खजाना भीतर में है। जहाँ से दोनों आँखों में शक्ति आती है। वह खजाना शिवनेत्र है। प्रकाश के बाद शब्द है। शब्द सभी जगह है। आज्ञाचक्र में जो जाता है वह उस मार्ग के शब्द को सुनता है। जहाँ ज्योति का अन्त होता है, वहाँ केवल शब्द ही रह जाता है। शब्द प्रकाश और अंधकार दोनों व्यापक है और अपना मंडल भी इन दोनों से ऊपर रखता है। क्योंकि जो सूक्ष्म होता है वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही समाया होता है। जहाँ शब्द का अंत होता है—लय होता है, वहाँ सृष्टि के पसार की भी समाप्ति होती है। जहाँ मोक्ष का परम पद है। इन तीनों—अन्धकार, प्रकाश और शब्द में भी कई स्थान माने हैं, ध्यान करने से उनकी प्रत्यक्षता होती है। समझाने के लिये अंधकार, प्रकाश और शब्द तीन ही बातें हैं। तुलसी साहब ने इसका बड़ा अच्छा [illegible] ा निवेरा' कहकर। शरीर [illegible] स मुक्त हो सकता है।

शरीर और संसार में बड़ा मेल है, जितने दर्जे शरीर में हैं, संसार में भी उतने ही दर्जे हैं। विश्व को हमलोग इतना ही नहीं मानते कि एक सूर्य तक, बल्कि महाकारण अर्थात् साम्यावस्था धारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति से लेकर स्थूल जगत तक विश्व है। इस विश्व को और मनुष्य शरीर को बड़ा मेल है। इस शरीर में अंधकार है तो विश्व में भी अन्धकार है। इस शरीर में प्रकाश है तो विश्व में भी प्रकाश है। इस शरीर में शब्द है तो विश्व में भी शब्द है। इस शरीर में— जाग्रत में— स्थूल शरीर में हैं, तो स्थूल संसार में रहते हैं। स्थूल शरीर का ज्ञान रहता है, तो स्थूल संसार का भी ज्ञान रहता है। स्वप्न में स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं रहता है, तो संसार के स्थूल भाग का भी ज्ञान नहीं रहता। इस नमूने पर सोचिये कि यदि जीव,शरीर के अंधकार भाग–स्थूल मंडल–से छूट जाय तो वह विश्व के अंधकार भाग—स्थूल मंडल— से भी छूट जायगा। और इसी तरह दोनों बचे हुए भागों और मंडलों से छूटना होगा। इस तरह जो पिण्ड को जीतता है, वह ब्रह्माण्ड को भी जीतता है। ऐसा नहीं होता कि शरीर से छुट्टी मिली और संसार से नहीं। मोक्षपद में पहुँचना, बिना सूक्ष्म मार्ग के नहीं होता है। जमीन का जो रंग होता है, वही उस पर के रास्ते का स्वाभाविक रंग होता है। अंधकार में अंधकार, प्रकाश में ज्योति और शब्द में शब्द मार्ग है। अभ्यासी केवल ज्योति के ही सहारे से ज्योति ज्योति में गुजरते हुए शब्द में चले, ऐसा भी हो सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि ज्योति में ही शब्द को पकड़ कर चले। इसके लिये चरित्र बहुत उत्तम होना चाहिये। चरित्र उत्तम होने से विषयासक्ति कम

(शेषांश पृष्ठ ७ पर)

बिखरे फूल

ज्ञान खान

स्थूल जीवन का राग कुछ दूसरा है, सूक्ष्म के संगीतालय में उससे भिन्न स्वर सुनाई पड़ता है—विचित्र विभिन्नता !

बाहर तेरा शत्रु नहीं है। वह तो तेरे घर में है, जिसे तूने अज्ञानता के वशीभूत पाल रखा है। इस अभिजात को गृह त्याग करा। अन्तर की उलझन सुलझने पर ज्ञान भी खुलता जायगा।

तेरी अव्यक्त पीड़ा के छिपे संकेत हैं, तू पीड़ा में ही डूबकर देख।

मनोविकार

मनोविकार मनुष्य का रूप बदल देते हैं, जैसे बादल आकाश का रंग।

वर्षा के मेघ से आकाश कभी घबड़ाया है ? मनोविकारों के बादल से तेरा अनन्त क्यों दब जाए ! वे स्वयं हट जायँगे, मिट जायँगे !

मन अपनी चंचलता नहीं छोड़ेगा।···तू अपना गाम्भीर्य क्यों दबाये है ! सागर ने अपनी विशालता कभी नहीं छोड़ी, भले ही उसकी छाती पर लघु लहरियाँ तिरती रहे।

बहुत दिनों के बाद अचानक पता चला कि यह अड़ियल टट्टू अहंकार ! जिस पर मानव को सवार होना चाहिये, वही मानव पर सवार है।

साधारणतः अन्तर की लहरें जैसे-जैसे उठती-मिटती है, वैसे-वैसे यह जीवन-नौका दिशा लेती है।

ज्ञान

अपनी अज्ञानता को पहचान लेना भी ज्ञान है।

बहती हुई धार में स्थिर रहना, ! यही तो स्थित-प्रज्ञता है।···तू पतवार क्यों समुद्र में डाल दे ! इसलिये कि वह उबल रहा है ! तेरा विशेष उससे क्या लेना देना··· ।

सब सितारों के खेल हैं, अंधेरे और उजाले की लड़ाई ! सृष्टि के रंगमंच पर यही महानाटक चल रहा है··· मानव का इस विराट रंगमंच पर कहाँ स्थान रहेगा, निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रकृति की सन्तान ! प्रकृत अवस्था में रह, सारे क्लेश स्वयं दूर होते रहेंगे

व्यक्तित्व की समग्रता

—केदार राम गुप्त (प्राध्यापक, मारवाड़ी कालेज, भागलपुर)

प्रायः हम व्यक्तित्व की बात करते हैं, उसके बारे में सोचते हैं और किसी अच्छे व्यक्तित्व के सम्पर्क में आने पर हम उससे प्रभावित भी होते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि आज की दुनिया के लिये, जब स्थान और समय पर मनुष्य ने करीब-करीब विजय प्राप्त कर ली है, किस प्रकार के व्यक्तित्व की आवश्यकता है? व्यक्तित्व कैसा और क्यों, यह प्रश्न आज की दुनिया में महत्वपूर्ण इसलिये हो गया और होता जा रहा है कि ज्ञान और विज्ञान की दशा में विशेषीकरण (Specialisation) का जोर बढ़ता जा रहा है। आप समझ लीजिये कि यदि आदमी के शरीर में नाक दस इंच की लम्बी हो या हाथ दो गज लम्बे हों या सिर का डायमेटर तीन फीट हो और पेट का घेरा कुल सात इंच हो, य॒ बैलून की तरह गुब्बारनुमा हो तो आदमी कैसा लगेगा। वदकिस्मती है कि भगवान ने सारे शरीर के अंगों को सानुपातिक बनाया है, पर आदमी के मस्तिष्क की ग्रहणशीलता को सानुपातिक नहीं बनाया, यही कारण है कि हमारे व्यक्तित्व में कौणिकता की (Angularlties) की इतनी अधिकता होती है कि हम ऊपरी ढाँचे में सानुपातिक होने के बावजूद भीतरी ढाँचे से विचित्र जीव हो जाते हैं।

कहने का सारांश यह है कि आज समग्र व्यक्तित्व वाला आदमी ही सामाजिक ढाँचे में फिट बैठ सकता है। इस समग्रता का अर्थ है कि हम अपने में सभी प्रकार की रुचियों का विकास करें। समाजशास्त्रियों ने [illegible] परिभाषा करते हुए कहा है कि यह [illegible]रिक सम्बन्ध का योग है और यह पारस्परिक का जन्म एक के द्वारा दूसरे के प्रति किये गये व्यवहार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। कहने का मतलब यह है कि यदि हमारा व्यवहार दूसरे के प्रति उदारता तथा दूसरे की कठनाइयों तथा समस्याओं की सराहना करते हुए होगा तभी दूसरे भी हमारे प्रति उचित तथा अनुकूल व्यवहार करेंगे। याद रहे हमारे व्यवहार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही दूसरे के व्यवहार के ढाँचे का निर्माण होता है। अतः हमारा व्यवहार दूसरे के प्रति सदाशयता तथा उदारता का होना चाहिये।

परन्तु यह उदारता का व्यवहार आये कहाँ से? इसी जगह व्यक्तित्व की समग्रता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। हमारा दृष्टिकोण अध्ययन, अनुभव तथा सम्पर्क से बनता है। अध्ययन संचित तथा लिखित अनुभवों को सुलभ बनाता है, अनुभव हमें कब, कैसे, क्यों, किससे कितना, कहीं आदि प्रश्नों का उत्तर, जो हमें अपने जीवन व्यापार में चाहिये, उपलब्ध करते हैं तथा सम्पर्क इसी उत्तर को क्रियात्मक रूप देता है। तो कहने का अर्थ है कि हमारा व्यक्तित्व ऐसा हो कि हम सभी परिस्थितियों, सभी प्रकार की समस्याओं के हल निकालने में अपने सामर्थ्य का योग दें। यदि हम व्यवसायी हैं तो शिक्षा के प्रति बिल्कुल ही उदासीन हों, देश के प्रति कोई विचार ही नहीं रखते हों, कला के प्रति बिल्कुल बहरे हों, बच्चों की समस्याओं के सम्बन्ध में हम शून्य हों, खेल-कूद जैसे चरित्र निर्माण के साधनों में हमारी आस्था नहीं हो, या दूसरे के अधिकारों एवं अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्माण में

बिल्कुल अनाड़ी हों— ऐसा होना चाहिये। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षक हो तो स्कूल, कालेज के बाहर समाज के सम्पर्क में रहने के फलस्वरूप उस पर जो क्रियाएँ हों उससे कोई प्रतिक्रया उत्पन्न हो ही नहीं— तब तो बड़ी मुश्किल हो जायगी।

व्यक्तित्व की समग्रता का अर्थ है मस्तिष्क की तन्तुओं का जागरुक होना उसकी ग्रहणशीलता को जिंदा रखना। समग्र वाले, व्यक्तित्व वाले की पहचान है उसकी सहिष्णुता दूसरों की अच्छाइयों को पकड़ने की सदैव तत्परता। बहुत-से मामलों में हमारा हठ, जिद या मूँछ का आड़े आ जाना, हमारा बहुत नुकसान करता है। सारे विवाद, कलह तथा जिच का अर्थ ही ऐकान्तिक व्यक्तित्व है।

मेरा अपना विचार है कि यदि शब्दकोशों से सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, अनुपम, अनूठा आदि एक बोधक शब्द निकाल लिये जायँ तो दुनिया का बहुद बड़ा भला हो। आज के युग में गांधी जी समग्र व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समझे जा सकते हैं। जीवन का प्रत्येक समस्याओं पर उनकी दृष्टि थी। अतः उन्होंने कभी नहीं कहा कि अमुक चीज सर्वश्रेष्ठ है। सर्वश्रेष्ठ तो केवल सत्य है। सत्य सापेक्षिक भी नहीं है।

तो यह बात निर्विवाद है कि विश्व की प्रगति से कदम मिलाने के लिये तथा मानव-सभ्यता एवं संस्कृति की देन से लाभान्वित होने के लिये हमें अपने व्यक्तित्व में समग्रता लानी चाहिये।

परन्तु इस समग्रता की नीव विद्यार्थी जीवन में ही डाली जा सकती है। विद्यार्थी जीवन में हमें सभी प्रकार के ज्ञान से पूरित होना चाहिए।

(पृष्ठ ४ का शेषांश)

होगी। विषयासक्ति कम रहने से उसका मन जल्दी सिमटेगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति में आवरणों का छेदन होता है। इस तरह सभी आवरणों के छेदन होने पर अन्त में परमात्म दर्शन होता है। चरित्रबल अच्छा चाहिये यह कौन नहीं कहता? संसार में जो प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं उनका चरित्र यदि अच्छा नहीं रहे तो उनकी प्रतिष्ठा कोई नहीं कर सकता। चरित्रबल अच्छा चाहिये।

—::—

ग्रंथ-पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन।
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन॥

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान--बड़ाई--ईर्षा, दुर्लभ तजना येह॥

जिसने तुमको सौंप दी, निज जीवन की डोर।
कभी उलझती ही नहीं, नागर नन्दकिशोर॥

तबलग जोगी जगत्-गुरु, जगसों रहत निरास।
जब आसा मन में लगी, जग गुरु, जोगी दास॥

—संतवाणी

कर्मयोग

—राम प्रसाद मंडल, 'साहित्यरत्न'
मंदार विद्यापीठ, (भागलपुर)

कर्म और 'योग' शब्द से कर्मयोग बना है। साधारणतः लोग दिन-प्रतिदिन के कार्यों को भी कर्म कहते हैं। खाना कर्म है तो गप करना भी कर्म है। अगर कोई वैज्ञानिक रसायनिक तत्वों को मिलाता है तो वह भी कर्म कहलाता है। अगर ये सब कर्म हो जाय तो शरीर के अंदर खून-संचालन होना, नख का बढ़ना या इसी तरह के कार्य को भी हम कर्म कह सकते हैं। परन्तु दर्शन शास्त्र में इन सबों को कर्म की संज्ञा नहीं मिली है। इसे तो शास्त्रकारों ने स्वाभाविक कर्म ही कहा है। बहुत लोग कर्म करते हुए भी कर्म नहीं करते हैं और ऐसे भी मनीषी हैं जो कर्म नहीं करते हुए भी कर्म में निरत रहते हैं। एक बार दो छात्र बाहर घूमने जा रहे थे। उसमें से एक ने कहा— भाई, बौंसी मैदान में फुटवाल मैच हो रहा है, हमलोगों को वहाँ शीघ्र पहुँचना चाहिये। दूसरे ने कहा— बंधु, मुझे तो खेल देखना पसन्द नहीं है। मेरी प्रबल इच्छा पहाड़ पर चढ़ने की है। अभी-अभी एक कीर्त्तन-दल वहाँ गया है। आखिर में पहला लड़का मैदान और दूसरा लड़का पहाड़ पर चढ़ा। खेल वाले लड़के को खेल पसन्द नहीं आया। खेल भी उतना सुन्दर नहीं हुआ। कोई प्रिय साथी न मिलने पर वह बार-बार सोचता था— काश, अगर मैं भी पहाड़ पर चढ़ता। पहाड़ वाले लड़के को कीर्त्तन पसन्द नहीं हुआ और साथी के बिना प्राकृतिक छटा भी असुन्दर ही जँचा। वह मन-ही मन पछताने लगा— आज का समय बेकार गया। अफसोस मैं भी फुटवाल मैदान जाता।

यद्यपि दोनों लड़कों के द्वारा अनेक कर्म किये गये किन्तु दार्शनिक इसे कर्म नहीं मानते। क्योंकि उनके मत से बिना मन के योग से कर्म कर्म नहीं हो सकता। यहाँ दोनों लड़कों के कर्मों में उनके मन का योग नहीं है। अर्जुन के यह पूछने पर कि 'कर्म क्या है?' भगवान इसका उत्तर गीता के आठवें अध्याय में इस प्रकार देते हैं—

"भूत भावोद्भव करो विसर्गः कर्म संज्ञितः" ॥३॥

भूतानां भावाः भूत भावाः तेषां उद्भव करः विसर्गः त्यागः।

अर्थात्, जिस त्याग-क्रिया से जीव में भाव की उत्पत्ति होती है, उसी का नाम कर्म है। जीवों के अन्तर्गत जो भाव-समूह सुषुप्त अवस्था में हैं उनका स्फोट कर देने का ही नाम कर्म है। अब प्रश्न है कि भाव किसे कहते हैं जो सुषुप्त अवस्था में है। गीता में भगवान ने इन्हें 'भाव' कहा है—

"बुद्धिर्ज्ञानं संमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखऽदुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्तएव पृथग्विधाः॥"

जब मनुष्य अपने चरित्रबल को खो देते हैं या झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करना या मत्स्य मांस को भोज्य पदार्थ समझ लेना तथा चोरी करना शुरू कर देते हैं तब उपर्युक्त 'भाव' दब जाते हैं। इन भावों के दब जाने से मनुष्य मोह और अज्ञानरूपी अंधकार में पड़ जाते हैं। शास्त्रमत के अनुसार कर्म में 'तम' को नाश कर प्रकाश की ओर ले जाने की शक्ति है। यह है कर्म की महिमा। इसी तरह श्रुति में कर्म की परिभाषा इस तरह है—

S. h. Santenu
VILL. BELABADAN, P. O. PIPARA,
(PURNEA)

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'
कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं। अर्थात्, निष्काम भाव से किये गये कर्म को ही 'कर्म' की संज्ञा मिली है। निष्काम भाव किसे कहते हैं, निबंध विस्तार के भय से नहीं लिख रहे हैं। अब हमें यह समझना चाहिये कि योग किसे कहते हैं।

साधारणतः लोग योग शब्द से भयभीत हो जाते हैं। वे सोचा करते हैं कि योग सन्यासियों की चीज है। योग के लिये हमें घर-द्वार छोड़ना पड़ेगा। कठिन-कठिन आपदाओं को ग्रहण करना पड़ेगा। पर यह भ्रम है। परन्तु भ्रम कहकर हमें छुटकारा नहीं मिल सकता है। भ्रम का यह सामाजिक रूप क्यों हुआ, यह गंभीर प्रश्न है। विचार करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सच्चे गुरुओं के अभाव में ही यह भ्रांति फैल गई है। दूसरी बात यह है कि लोग 'हठयोग' को ही योग मानते हैं। 'हठयोग' की जो कठिन प्रणाली है, उसे साधारण लोग जीवन में नहीं उतार सकते। हठयोगान्तर्गत निर्देशित पद्धति से साधना करनेवालों में से अनेकों की दुर्गति देखी गयी है। इन्हीं सब कारणों से लोगों में 'योग' शब्द के बारे में भ्रांति फैल गई है। योग के लिये घर-द्वार छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती है और न उससे नीचे गिरने का भय ही रहता है। कहा गया है गीता में :—

नेहा भिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अर्थात्, इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उल्टा फल-दोष भी नहीं होता है, इस लिए इसका थोड़ा भी साधन जन्म मृत्यु रूप महान् भय से उद्धार करता है।

योग के ज्ञान-पक्ष को हृदयंगम कर लेने के पश्चात् भी इसकी अनुभूति साधना के अभाव में सम्भव नहीं है। क्योंकि योग विशुद्ध रूप से साधनात्मक है। इसकी प्रक्रियाओं में इतनी क्रम-बद्धता और लगाव है कि साधक को सदैव सद्गुरु के सदय निर्देशन की आवश्यकता है।

अतः सच्चे गुरु की शरण लिये बिना इस मर्म का उद्बोधन होना कठिन मालूम पड़ता है। यद्यपि सच्चे गुरुओं का अभाव इस देश में नहीं रहा है फिर भी उन्हें जानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। विश्व के रंगमञ्च पर ऐसे सद्गुरु अवतीर्ण होते रहे हैं जो जिज्ञासुओं को ज्ञान की उपलब्धि कराते रहे। जिसमें जितनी श्रद्धा रहती है, वे उतनी ही भक्ति संचित कर पाते हैं। पवित्र गंगाजल को लेने के लिये दूर-दूर के भक्त-गण आते हैं। कोई हरिद्वार का जल लेते हैं तो कोई पटना का। कोई शीशी में भरते हैं तो कोई तुम्बा में। बहुत ऐसे भी मनुष्य हैं जो हरिद्वार में रहते हुए भी गंगाजल का पान नहीं कर सकते हैं। यही हालत मनुष्यों की है। सभी लोग सद्गुरु से लाभ नहीं उठा सकते हैं। आदिकाल से भारत महापुरुषों की वाटिका रही है। इस वाटिका में श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, व्यास, वशिष्ठ, जनक, कपिल, बुद्ध, शंकराचार्य, सीता, सावित्री, गार्गी आदि कितने ही कल्याणकारी और मनोहारी पुष्प खिले हैं। आज के कलुषित युग में भी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, आदि मनीषियों ने कर्मयोग की साधना न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में की, वरन् इसे जन-समाज में प्रचारित भी किया। वर्त्तमान समय में भी पूज्यपाद श्री गुरुवर श्री श्री १०८ स्वामी मेंहीं दास जी और संत विनोबा जी भ्रमण कर पीड़ि- मानवों को कर्म योग के रहस्य को सरल और

वाणी में समझा रहे हैं। काश, अगर संसार के लोग इन शब्दों को समझ कर अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते। संत शिरोमणि कबीर ने कहा है—

जिन ढूँढ़ा तिन पांइयाँ, गहरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहे किनारे बैठ॥

कर्मयोग के रहस्य को जाननेवाले हमेशा निष्काम कर्म करते हैं। या यों कह सकते हैं कि उनका सारा कार्य निष्काम ही होता है। बगुला चाहे कितना ही ध्यानमग्न होकर, आँख मूँदकर क्यों न बैठे, उसका लक्ष्य तो मछली पकड़ना ही रहता है। ऐसे ध्यानी लोग कर्मयोग को नहीं समझ सकते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि कर्मयोग के जिज्ञासु को सबसे पहले स्थूल शरीर का मोह छोड़ना पड़ेगा। बिना स्थूल शरीर के मोह-त्याग के निष्काम कर्म में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसी भारत में शिवि ने अपने शरीर से मांस के टुकड़े काट-काट कर व्याघ्र को प्रदान किये थे, क्योंकि पक्षी के प्राण बचाने थे और व्याघ्र की भी भूख मिटानी थी। अपने को मिटाकर दूसरों का कल्याण करनेवाले त्यागी कर्मवीरों के एक-से-एक उत्तम दृष्टान्त हमें उपलब्ध होता है। शरीरावेष्टित कवच-दान का परिणाम मृत्यु है— ऐसा समझकर भी कर्ण पीछे नहीं हटा। दे दिया उसने कवच। दुखित और शत्रुओं से पीड़ित पांडवों को पितामह भीष्म ने अपनी मृत्यु का उपाय स्वयं बतला दिया। इस तरह पवित्र करनेवाली कथाएँ संसार के अन्यान्य जातियों के इतिहास में भी मिलती हैं। ऐसे ही लोगों का कर्म-विमुख होना स्वाभाविक है। श्रद्धा और विश्वास दोनों एक ही पैसे के दो रूख हैं। बिना श्रद्धा-विश्वास के कोई साधना फलवती नहीं होती। कहा है गोस्वामी तुलसीदासजी ने—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति स्वांतस्थमीश्वरम्॥

कहने का तात्पर्य यह कि बिना श्रद्धा और विश्वास के आत्मस्थ प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आनन्द प्राप्त करना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है। इस अद्भुत आनन्द की निष्पत्ति निष्कामावस्था में ही होती है। योग को काम नष्ट करने की प्रक्रिया भी मानी गयी है। इस तरह योग के द्वारा साधक अपने मानस धरातल को विशुद्ध और साम्यावस्था में अवस्थित कर, नाना तरह के भौतिक परितापों और दुःखों से मुक्त होकर, निरंतर आनन्द-पथ पर अग्रसर होता रहता है। निस्सन्देह कर्मयोग द्वारा कर्म करने वाले दुःखों से अछूते रह जाते हैं। अतएव कर्मयोग का प्रचार और प्रसार जन-समाज में विपुल पैमाने पर होना चाहिए। इस देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में यही यहाँ की सबसे बड़ी समस्या है। यदि इस समस्या को हम अपने श्रेष्ठ आध्यात्मिक पद्धति द्वारा सुलझा सके तो यही विश्व को हमारी श्रेष्ठ और शाश्वत देन होगी। —:—

"होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥"

—संत तुलसी दास

श्री अरविंद और दिव्य जीवन

—श्री दीपनारायण तिवारी

क्या हमारे जीवन का भी कोई उद्देश्य है ? क्या मृत्यु की गोद में लीन होने के बाद भी कोई जीवन है, और वह भी इसलिए कि हमारी, या जीवात्मा की उन्नति या विवर्त्तन का जीवन शान्ति-सन्देश देता हो ? जीवन जिसे हम देख रहें हैं, क्या यह ऐसे साँचे में ढाला जा सकता है जिसे दिव्य जीवन के नाम से पुकारा जा सके ? इसका मार्ग भी है क्या ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री अरविन्द ने केवल ' हाँ ' कहा । हमारे जीवन में भगवान का अवतरण हो इसी उद्देश्य से भगवान ने स्थूल जगत की सृष्टि की और बारंबार आकर जिज्ञासुओं की अभिलाषा को फलप्रद किया । अपनी भाषा में यदि " पारस " की संज्ञा उन्हें दी जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

आदि ऋषियों ने जिस स्तर को "ऋत चितं" या "सत्यं ऋतं बृहत्" कह कर पुकारा था, उसी स्तर को श्री अरविन्द ने Supermind या Superamental plane कहा । विवर्त्तन की परिधि इतनी बड़ी हो गई है कि अब ऋषियों के स्वप्न स्थूल जगत में फलप्रद हो सकेंगे, इसका दर्शन श्री अरविन्द ने स्पष्ट किया । अपनी सारी शक्ति से इसे उतारने की चेष्टा की और उतारा इस ऋत सत्य (Truth Consciousness) को भौतिक स्तर पर । किसलिए ? जिससे कि ऋषियों का स्वप्न कार्य में अनुवादित हो सके । मार्ग क्या है इस विराट ध्येय का ? इस मार्ग को श्री अरविन्द पूर्ण योग कहते हैं । योग की पूर्णता श्री अरविन्द तब तक नहीं मानते जब तक भौतिक सत्ता को यह बोध न हो जाय कि उसका आदि स्रोत सत - चित - आनन्द - परात्पर है । इस चेतना की उपलब्धि में हमारे शरीर का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके अन्नमय कोष में भागवत सत्ता अभिव्यक्त होकर ही हमारे जीवन को दिव्यता दे सकती है, पूर्णता दे सकती है । श्री अरविन्द इतने से सन्तुष्ट नहीं हुए कि आत्मा को परमात्मा की उपलब्धि हो जाय या मानसिक स्तर पर भगवान के दर्शन या प्राण उनके विरह में विकल हो जाय, बल्कि यह शरीर भगवत मय हो जाय, यही उनकी पराकाष्ठा थी— यही है ऋषियों के दिव्य मन्त्र दर्शनादि की चरमावस्था । अब प्रश्न यह उठता है कि यह जगत— माया— मिथ्या नहीं है क्या ? श्री अरविन्द तो नहीं मानते । यहां की— इस पृथ्वी पर की— सारी वस्तुएँ भगवान की विशालता की अभिव्यक्ति के लिए ही विद्यमान हैं, ऐसा वे मानते हैं । समय-समय पर जितने भी महापुरुष आए, उन्होंने इस मार्ग को प्रशस्त करने में ही सहायता दी, भगवत प्राप्ति की महान योजना को सफल बनाने में ही मदद की । विभिन्नता केवल अधिकारी विशेष की और काल की है । सभी प्रकार की वस्तुएँ एक ही प्रकाशपुंज को अपने द्वारा निखरित करने में सहायता कर रहीं हैं, पर स्थूल आंखों को नानात्व का बोध होता है । वास्तव में सत्य एक है और वह सबमें है । यह स्थूल भौतिक जगत और प्रकाशमान भगवत चेतना एक होते हुए भी, स्वाति बूंदों की तरह, विभिन्न पात्रों की मर्यादा से घिर कर भिन्न-भिन्न रूप ले लिया करती है ।

यह अज्ञान आया कहाँ से ? श्री अरविन्द इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि इस नानापन का कारण है इन्द्रियों की राह से हमारी चेतना का प्रसार । तात्पर्य यह कि भौतिक स्तर में हमारी भागवत चेतना प्रसारित होकर इतना घुलमिल गई है कि इसे हम अज्ञान वश अलग नहीं कर सकते । यहीं से नानात्व का बोध भी प्रारम्भ होता है । इस भावना का उद्रेक होता है । (शेषांश पृष्ठ १५ पर)

"चर्म दृष्टि देखै बहुत, श्री आनन्द आत्म दृष्टि एक"

उपनिषदों की स्थापना है :—

यदेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

२ । १ । १० कठोपनिषद्

जो परब्रह्म यहाँ है वही वहाँ है, जो वहाँ है वही यहाँ भी है। जो इसमें नानापन (विविधता) देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है। (अभी तो वह मरेगा ही और आगे भी जन्म प्राप्त करके मरता रहेगा।)

जब वह एक है तो उसके देखने-पाने का मार्ग भी एक अवश्य होगा। इस में संशय की कोई बात हो ही नहीं सकती। वह 'एक' है जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं—

यस्मात्परं ना परमस्ति कश्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ श्वे० ३ । ९ ।

जिससे परे और कोई नहीं, (यानि जो सब के परे है—सबसे श्रेष्ठ है) जिस से अधिक सूक्ष्म और जिस से अधिक महान कुछ भी नहीं ! एकाकी वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से प्रकाशमय आकाश में स्थित उस परमपुरुष से सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है।

ईशावास्योपनिषद् में इस प्रकार है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़चेतन स्वरूप चराचर है, सब ईश्वरसे व्याप्त है। वे नहीं चलते हुए भी चलते हैं। उन से दूर कोई नहीं, उनसे ज्यादा नजदीक भी नहीं।

इन परस्पर विरोधी तत्त्वों को एक साथ धारण करने वाले का स्वरूप कैसा होगा ? किसी साधारण मानव की तरह ?

कोई भी साधारण मानव सर्वत्र कैसे फैला रह सकता है। हाँ, उस में भी परमात्मा हैं जिस तरह वे सब में हैं। यदि उस मानव चोला में किसी आत्मद्रष्टा की आत्मा है तो वह महान् है। उस अमृत पुत्र से पृथ्वी का उपकार होता है।

कबीर साहब ने थोड़े में इन गूढ़ रहस्यों को इस तरह समझाया है—

संपदि में समाइयाँ सो साहब नहिं होय।
घट-घट में रमि रह्या, मेरा साहब सोय ॥

नानक साहब ने इस तरह कहा है—

घटि-घटि अन्तरि ब्रह्म लुकाइया, घटि घटि जोति सबाई ॥

इस संसार में कोई भी उस परमात्मा का स्वामी नहीं है, न उसका कोई शासक है और न लिंग। वह सब का कारण है। वह 'बिनु पग चलै, सुनै बिन काना। बिनु कर कर्म करै बिधि नाना ॥'

प्रश्न उठता है कि उसको जाना कैसे जाय ? पाया कैसे जाय ?

बिना उसको जाने और पाये मुक्ति नहीं मिल सकती। 'बनु हरि भजन न भव तरई।' चाहे 'लाख लाख करे किन कोय।'

इसीलिये उपनिषदों का निर्देश है—

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मनं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥

वेद के रहस्य का वर्णन करनेवाले महापुरुष जिसके जन्म का अभाव बतलाकर जिसको नित्य कहते हैं, जो जरामृत्यु आदि विकारों से रहित है उस पुराण पुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूँ। —श्वेत० ३ । २१ ।

उसको जान लेनेवाला कहता है—

अविद्या अंधकार से रहित, सूर्य की भाँति स्वयं

प्रकाशमान इस महान् पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूँ। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को पार कर सकता है। इसके लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्,
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
श्वेत० ३। ८।

यहाँ खयाल करने की बात यह है कि खुले तौर से और साफ-साफ कह दिया है वेदों के मंत्रद्रष्टाओं ने— उसको जानकर ही मृत्यु को पार किया जा सकता है और कोई दूसरा रास्ता नहीं।

ईश्वर एक है और उसकी प्राप्ति का रास्ता भी एक है।

उस एक को आप चाहे जिस नाम से पुकारो।— सब का मूल्य बराबर है, किसी एक का उत्तर चाहिये।

इसी तथ्य को संत दादू जी महाराज ने इस तरह समझाया है—

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त।
चिति आवै सो लिखिये, यों साधु सुमरै संत ॥

अब प्रश्न उठता है कि उस एक को प्राप्त करने का कौन-सा वह एकमात्र मार्ग है जिसके बारे में उपनिषद् कहती है— "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

इसलिये सबसे पहला काम हो जाता है कि हम परमात्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें। यहाँ संतवाणी का आदेश है—

परिचय बिना प्रतीति नहीं, बिना प्रेम नहिं ध्यान।
नाव चले नहीं जल बिना, गुरु बिन होय न ज्ञान ॥

(१) परिचय, (२) विश्वास, (३) प्रेम, (४) ध्यान, और गुरु। इन पाँचों की आवश्यकता यहाँ बतलाई गयी है।

परमात्मा मन और बुद्धि के परे— सब के परे है। जानकारों का कहना है कि वह निराकार है। वेदों में और संतों की वाणियों में बार-बार याद दिलाया गया है। यहाँ केवल कुछ ही दिये गये हैं।

उस निराकार की उपासना कैसे की जाय जो उस से परिचय हो जाय? इसका रहस्य तो उसी को मालूम होता है— 'जेहि देहु जनाई' और फिर उनको जानकर उन्हीं के ऐसा हो जाता है। इसीलिये कबीर साहब का निर्देश है—

परम पुरुष की आरसी, साधुनही का देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनही में लखि लेह ॥

साधु संग या सत्संग हो तो फिर कुछ परमात्म-स्वरूप का ज्ञान होने लगता है। इसीलिये गो० तुलसी दास जी महाराज की स्थापना है— 'प्रथम भक्ति संतन कर संगा।'

फिर अगर उनकी इच्छा हो गयी तो फिर वह मार्ग सरल हो जायगा जिस पर चलकर परमात्मा की प्राप्ति होगी। ज्ञानियों एवं तत्त्वदर्शियों का कहना है कि यह बड़ा दुर्गम पथ है। 'क्षुरस्य धारा'— छुरे की धार की तरह तेज और बारीक। इस रास्ते पर चलने की जानकारी— 'प्रणिपातेन प्ररिपश्नेन सेव्या।' (गीता)। यानि नम्रतापूर्वक सेवा किये बिना यह नहीं प्राप्त हो सकता। अतएव, 'प्राप्य वारिन्निबोधत'— जिन श्रेष्ठ पुरुषों को मालूम हैं (संत, महात्मा, गुरु) उनसे प्राप्त करे। 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्'
मुण्डक० १। २। १२।

उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये वह सद्गुरु के पास जाय, उसकी शरण ले, उसकी सेवा करे, उसके आज्ञानुसार चले, तब वे कृपा करके ज्ञान सिखावेंगे; विधि और मार्ग बतावेंगे और सुझावेंगे।

कहने का तात्पर्य यह कि वेदों में जिस एकमात्र

मार्ग की ओर संकेत किया गया है, वह गुरुगम्य है। शास्त्रों एवं संतवाणी से जो संकेत मिलते हैं, उस पर यहाँ विचार किया गया है।

उस मार्ग की जानकारी अगर हो भी जाय और उस पर चलने की योग्यता अगर नहीं तो फिर मार्ग जान लेने का क्या फायदा ?

कहा गया है मुण्डकोपनिषद् में—

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यान
मानः॥" ३। १। ८।

'वह निर्गुणनिराकार परब्रह्म परमात्मा न तो नेत्रों से, न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ग्रहण करने में आता है तथा तप से अथवा कर्मों से भी ग्रहण नहीं किया जा सकता। उस अवयव रहित परमात्मा को तो विशुद्ध अन्तःकरण से निरन्तर उसका ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है।'

जब तक मनुष्य सर्वथा शुद्ध और पापरहित नहीं हो जाता— वह ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता।

गुरु नानक के शब्दों में—

"सूचै भाड़ै साचु सामावै विरले सूचाचारी।"

अर्थात्, पवित्र पात्र में ही सत्य समाता है और कोई-कोई ही सदाचारी होते हैं।

सदाचारी कहने का मतलब है —सत्य हो जिसके आचार में।

जो कहे कुछ और करे कुछ और उसके लिये कहा गया है—
कहता सो करता नहीं, मुंहका बड़ा लबार।
आखिर धक्का खायगा, साहब का दरबार॥

मगर सत्य है क्या ? उत्तर है—'सत्य ब्रह्म।' बृहदा ५। ५। १

सत्य ही ब्रह्म है। इसीलिए 'देवाः सत्यमेवोपासते।' परमात्मा को पाये बिना मुक्ति नहीं। इस लिये सदाचार चाहिए। सत्य की उपासना चाहिए। जबतक सत्य का समावेश साधक में नहीं हो जाता तब तक उसको परमात्म-स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। संत सूरदास जी ने कहा है—

"जौं लौं सत्य स्वरूप न सूझत।"
तौं लौं मनुमणि कण्ठ बिसारे फिरत सकल बन बूझत।
अपनो ही मुख मलिन मन्दमति, देखत दर्पण माँह।
ता कालिमा मेटिबे कारण, पचत पखारत छाँह॥
तैल तूल पावक पुट भरि धरि बने न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नासत॥
सूरदास जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखे।
कह जाने हिमकर की महिमा, अन्ध नयन बिनु देखे।"

सत्य की उपलब्धि के लिए सदाचार चाहिए और सदाचार से हृदय पवित्र हो जाता है। तभी परमप्रभु की प्राप्ति के मार्ग पर चलने की योग्यता होगी। इसीलिए भगवान मनु महाराज का आदेश है —

"एवमाचरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाधारं जगृहुः परम॥"
मनु १। ११०।

इस प्रकार मुनियों ने आचार से धर्म की प्राप्ति देखकर आचार को ही तपों का परम मूल माना है।

कहा गया है वेदों में— "ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नते।" ब्रह्मचर्य एवं तप से देवों ने मृत्यु को नष्ट कर दिया। (अर्थात्, मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया।)

मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है। वह मार्ग सत्य का है। सत्य में सभी तपों की परिसमाप्ति— सत्य ब्रह्म है।

किसी भी धर्म में झूठ बोलने का आदेश नहीं है। सभी सद्ग्रन्थों और संतों की बात एक है। फिर मार्ग की भिन्नता का प्रश्न क्यों उठता है ?

इसलिये कि हम स्वयं दुराग्रही हैं। संतों की वाणी का

अनुसरण तो दूर की बात रही, अध्ययन-मनन भी हम नहीं करते। हम स्वयं सच का पर्दा हटाकर नहीं देखना चाहते हैं।

(पृष्ठ ११ का शेषांश)

किन्तु एक ही है सब में। उस एक का दर्शन अपने में पाना होगा। श्री अरविन्द के शब्दों में– (If there is a Being that is becoming, a Reality of existence that is unrolling itself in Time, what that Being, that Reality secretly is, is what we have to become. so to become is our life's significance)— "यदि यह सत्य है कि एक अखंड अनन्त सत्य देश-काल के मध्य व्यक्त हुआ है तो उस अखण्ड सत्य का जो यथार्थ स्वरूप है, उस स्वरूप की प्राप्ति हमें करनी होगी।"

यही हमारे जीवन का लक्ष्य है। यही हमारा भाग्य है। वह स्वरूप सर्वत्र आत्मचेतना बन समस्त सृष्टि में अन्तर्निहित है। विकासोन्मुख वह चेतना जो समस्त सृष्टि मे फैली है उसके विकास का क्रम देखने पर अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि वह मानव-चोला में सर्वाधिक विकसित है। श्री अरविन्द के शब्दों में— (All spiritual life is in its principle a growth into divine living)— समस्त आध्यात्मिक जीवन का सिद्धान्त है क्रमशः विकासोन्मुख वह जीवन-पथ जो दिव्य-जीवन तक पहुँचा दे।"

इसकी प्राप्ति का मार्ग ?

वह मार्ग जो फैली हुई चेतना को अन्तर्मुखी करके हमें दिव्यता की प्राप्ति करवा दे।

इस तरह अपने अन्दर देखना, अपने अन्दर प्रवेश करना सबसे पहला कर्त्तव्य है। इस तरह प्रकृति दिव्यता प्राप्त कर लेगी।

पुनः स्पष्ट करते हुए श्री अरविन्द ने कहा है–(Man's true way is to discover his soul and its self-force)

मनुष्य के लिये सच्चा मार्ग वही है जो उसे अपनी आत्मा को पहचान करवा दे तथा उसकी शक्ति से परिचित करवा दे।

मानव-समाज दिव्यता की प्राप्ति करके शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करे यही उनका संदेश है।

हर देखनेवाले की बात एक है— चाहे वह किसी देश या काल का हो।

इससे अगर आपका मत भिन्न है तो हमारा निवेदन है—

जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एक मति, तिनकी एकै जात॥

दूसरी बात जो हम यहाँ विचार के लिये आपके समक्ष रखना चाहते हैं वह यह कि जब जहाँ कहीं भी वेदों में ब्रह्मज्ञान की बात कही गयी, वहाँ प्रत्येक बार कह दिया गया है— ऐसा हमने अगलों से सुना है। 'इति सुश्रुमधीराणां ये नस्तद्विच चक्षिरे।'

ऐसाही हमने सुना है धीर-पुरुषों (ज्ञानी-संत-महात्मा-योगी) से, जिन्होंने बहुत अच्छी तरह समझा कर बतलाया है। —ईशोप० ११। १३।

(ध्यान देने की बात है कि केवल १८ मंत्रों के इस गूढ़-गम्भीर ईशोपनिषद् में एक नहीं दो-दो मंत्रों में इस सत्य को दोहराया गया है।)

केनोपनिषद् में फिर आचार्य कहते हैं—

इति सुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद्विचचक्षिरे। (केनो० ३।)

ऐसा हमें पूर्वाचार्यों से मालूम हुआ और उन्होंने बहुत अच्छी तरह समझाकर यह ज्ञान दिया।

इसका क्या कारण है? बार-बार पूर्वपुरुषों का हवाला क्यों ?

बात यह है कि यह परम प्रभु की प्राप्ति का मार्ग 'खंनिहूं तिखी, बालहु नीकी' है। यह गुरुगम्य है। गुरु से जैसा शिष्यों ने पाया वैसा उन्होंने फिर अपने शिष्यों को बताया। फिर आदि गुरु ?

आदि गुरु स्वयं परम प्रभुपरमेश्वर।

कहा गया है पातञ्जलि योगदर्शन में—

"पूर्वेषामपि गुरुः कालेन नवच्छेदात्" (२६)।

पूर्वाचार्यों के भी गुरु हैं परमात्मा।

इस गुरु परम्परा को काल नहीं तोड़ सकता। यह परम्परा सृष्टि के आरम्भ से चलती आ रही है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाते हुए जो आदेश दिये गये हैं उनका सार थोड़े शब्दों में है— पंचशील। सीधे-सादे शब्दों में– झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार का त्याग। अर्थात्, सदाचार।

जब इन पाँचों मनोविकारों से पूरी छुट्टी मिलेगी तभी परमात्मस्वरूप का अनुभव होगा– ऐसा ज्ञानियों का मत है।

जब बाहरी तमाम आदेशों में कोई फर्क नहीं है तो फिर आन्तरिक बातों में भेद क्यों?

भेद-दृष्टि को त्याग कर देखना चाहिये। विचार करने पर स्पष्ट है कि परमात्मा की प्राप्ति का जो एक-मात्र मार्ग है। उसी को अनुसरण करना चाहिये।

वह मार्ग बाहर नहीं अंदर है।

इसीलिये कहा है गुरु नानक साहब जी ने—

सब किछु घर माहिं, बाहरि नाहीं।
बाहरि डोलै सो भरमि भुलाहीं॥

उपनिषदों का उपदेश भी यही है—

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कार्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एकोवशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥
श्वेत० ६। ११। १२।

वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ सर्व-व्यापी और सर्वान्तर्यामी है। वह कर्माध्यक्ष है, सब भूतों का निवासस्थान है। सबका साक्षी चेतन-स्वरूप वह परमात्मा सर्वथा विशुद्ध एवं निर्गुण † है। हमारी सारी गुत्थियों का उत्तर है इन दो मंत्रों में।

पहली बात वह परमात्मा सब प्राणियों को में छिपा है।

इसीलिये सब पर दया रक्खो, किसी को दुःख मत दो, हिंसा से बचो, अहिंसा की महत्ता को समझो।

कहा गया है ईशावास्योपनिषद् में—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो (साधक) सब प्राणियों को अपनी आत्मा से पृथक् नहीं देखता और उन प्राणियों की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है— वह किसीसे भी घृणा नहीं करता। अपने में सब का और सब में अपने को देखनेवाला निर्भय है। वह सभी में परमात्मा को और परमात्मा में सब को देखता है।

ऐसे भक्त की उक्ति है—

"जहँ-जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा।
जोइ-जोइ करूं सो पूजा।
सहज समाधि उर धारूँ।
भाव मिटा दूँ दूजा॥"

भक्तराज नारद का आदेश है—

'सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः।'

सब समय, सब भाव से निश्चिन्त होकर केवल भगवान ही भजनीय हैं।

सब में जो छिपा है उसको प्राप्त करने का रास्ता दस-बीस नहीं है।—और न सौ-पचास है। वह एक है, केवल एक।

वह रास्ता अपने अन्दर ही है। इसलिये जो

† यहाँ 'निर्गुण' शब्द का प्रयोग किया गया है। निर्गुण की उपासना के भारतीय प्रचलन को जो लोग सूफियों की देन बतलाते हैं उनका भ्रम निवारण होना चाहिये। हिन्दी के संत-साहित्य में जो निर्गुण-उपासना-पद्धति प्रचलित है उसकी परम्परा स्वम्भू से निःसृत है।

शाश्वत सुख-शान्ति की चाहवाले हैं वे आत्मस्थ परमप्रभु को देखते हैं।

'पश्यति' का अर्थ देखना है।

हमने आरम्भ में ही जो मंत्र दिया है उसमें "पश्यति" शब्द आया है। पुनः मुण्डकोपनिषद् का जो मंत्र (३। १। ८), दिया गया है वहाँ भी 'पश्यते' है। सूरदास जी का जो पद दिया गया है वहाँ भी है— 'जौं लौं सत्य स्वरूप न सूझत।' भगवान मनु ने भी 'दृष्ट्वा' (देखकर) का उपयोग किया है। श्वेताश्वरोपनिषद् (६। ११। १२) का जो मंत्र है वहाँ भी 'पश्यन्ति' है। ईशावास्योपनिषद् के मंत्र में भी 'पश्यति' है। (संत वाणियों में जहां-जहां इस शब्द का प्रयोग हुआ है वहां-वहां उनके नीचे लकीरें दे दी गयी हैं।)

जब इतनी दफा 'देखना' का प्रयोग किया है तो देखना चाहिये कि इस 'देखने' के पीछे क्या-क्या रहस्य है।

देखने का मतलब हुआ जान लेना, पहचान लेना। जान-पहचान होने से दृढ़ता होगी।

देखने की वह विद्या जो परमात्मा की प्राप्ति करवा दे— दृष्टियोग है।

इस विद्या को गीता में 'राजविद्या राजगुह्य' कहा गया है। इसकी व्याख्या पूज्यपाद स्वामी मेंहीं दास जी महाराज (अखिल भारतीय संतमत सत्संग के वर्त्तमान आचार्य) ने इस तरह की है— "यह नाम बड़ा आकर्षक है। इसमें कहा गया है कि वह ज्ञान 'अकल्याण से बचावेगा। इसमें पापों से मुक्त करनेवाला बिज्ञान सहित ज्ञान बतलाया गया है। सब गूढ़ और गुप्त रहस्यों में यह सर्वश्रेष्ठ है। ··· अवश्य ही इसकी श्रेष्ठता भी अस्वीकार करने योग्य नहीं। यह पवित्र और उत्तम विद्या प्रत्यक्ष बोध देनेवाली, धर्ममय, आचरणमें सुख-साध्य और अक्षय है। परन्तु इसमें भी श्रद्धा की विशेषता है।···

अब राज गुह्य का अभिप्राय भी स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। गुप्त या गूढ़ रहस्यों में जो सबसे विशेष गुप्त हो, उसको 'राजगुह्य' कहना चाहिये। इस अध्याय के किस विशेष रहस्यमय कथन को यह आकर्षक नाम दिय गया है? यदि कहें कि प्रत्यक्ष जानने में आने योग्य स्थूल-सगुण नररूप परमात्म के रूप की अवज्ञा नहीं करके, उसमें अत्यन्त श्रद्धा रखकर, इस अध्याय में कही गई रीति से भक्ति करने का जो कथन है वही 'राज गुह्य' तत्त्व है, तो यह कोई गुप्त और विशेष रहस्यमय नहीं जान पड़ती। यह भक्ति भारत में सर्वत्र प्रकट है और अति व्यापक रूप से विदित है। हाँ, यदि उपर्युक्त प्रचलित स्थूल-सगुण भक्ति में सूक्ष्म-सगुण 'अणोरणीयाम्' बिन्दु रूप की निराकार भक्ति और ॐ (शब्दब्रह्म वा शब्दनाद) रूप निर्गुण निराकार भक्ति मिला दें, तो इस प्रकार सर्वांगपूर्ण परमात्म भक्ति को अवश्य 'राजगुह्य' कहेंगे। (गीतायोग प्रकाश) †

"यह प्रकट रूप से विख्यात नहीं है और अति स्वल्प-संख्यक लोग ही इसे जानते हैं। ······देखने और सुनने की युक्तियाँ भक्तों को भेदी (युक्ति जानने वाले) गुरुद्वारा ज्ञात होती है; जिनके द्वारा अभ्यास करके वे बिन्दु और नाद को सुख-साध्य रीति से प्रकट पाते हैं।" (गीतायोग प्रकाश)।

देखने की उस युक्ति की बड़ी महत्ता है। इस

† गीता योग प्रकाश, —लेखक स्वामी मेंहींदास जी महाराज। प्राप्ति स्थान— संतमत सत्संग मन्दिर मनिहारी। पो० मनिहारी, जि० पूर्णियाँ (बिहार) मूल्य १॥०

युक्ति का अवलम्बन करके साधक दृश्य जगत के पार पहुँच जाता है। कहा है तुलसीदास जी ने—

"गो गोचर जह लगि जाई, सो सब माया जानहु भाई।"

दृश्य जगत एवं इन्द्रियों की जहाँतक पहुँच है वह सब माया है। माया के पार देखने के लिये पहले माया में से ही चलना होगा। हम सभी दृश्य जगत के जीव हैं। स्थूल जगत के हम जीवों को स्थूल प्रतीक चाहिये। इसीलिये सगुणोपासना के लिये गुरु, राम, कृष्ण, शंकर, शक्ति, सरस्वती, बुद्ध, ईसा, ताओ या अन्य कोई भी प्रतीक, जो आपको भावे, सो ग्रहण कीजिये। इतना अवश्य याद रखिये कि स्थूल के सहारे स्थूल के पार जाना है। —जैसे पानी के सहारे, पानी में तैर कर, हम पानी से बाहर निकल जाते हैं।

स्थूल का सहारा लेकर ही आप सूक्ष्म में प्रवेश कर सकते हैं। —इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं। प्रश्न उठता है कि स्थूल और सूक्ष्म मंडलों के संगम का पता क्या है?

जितना, जो कुछ भी हम स्थूल मंडल में पाते हैं वह सभी एक निश्चित आकार-प्रकार का वस्तु है। जिस किसी वस्तु में आकार है वह रेखाओं के सामंजस्य का परिणय है। रेखाएँ बिन्दु की गति से बनती हैं। बिन्दु ही सम्पूर्ण दृश्य जगत के आकारों के मूल में है। बिन्दु की परिभाषा?

हर विद्यार्थी जानता है कि— बिन्दु का स्थान तो निश्चित है पर उसका कोई परिमाण नहीं।

किन्तु आप चाहे कितनी ही बारीक नोंक से बिन्दु बनाकर देख लीजिये कि वह कुछ न कुछ स्थान लेता है या नहीं?

यही विरोधाभास लिये बिन्दु हमें स्थूल और सूक्ष्म के संगम पर खड़ा होकर कहता है— "मैं ही 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' परमप्रभु का प्रतिनिधि हूँ। मुझको रूप है और फिर भी मैं अरूप हूँ, मुझे आत्मदृष्टि से ही जान सकते हो।

कहने का मतलब यह है कि बिन्दु की अनुभूति दृष्टियोग से होती है। यह मार्ग प्रकाश का मार्ग है। इसीलिये संत-साहित्य में वैदिक काल से प्रकाश की चर्चा होती रही है।

जब दृश्य जगत के पार जाने की क्षमता साधक में हो जाती है तो वह सूक्ष्म के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाता है। यह सूक्ष्म ही 'अणोरणीयां' है। यहाँ आने पर साधक में 'नादब्रह्म' की उपासना करने की शक्ति आ जाती है।

लक्ष्य नादब्रह्म है। इस लक्ष्य की प्राप्ति शाश्वत-शान्ति की प्राप्ति है। इसके अनेक नाम दिये गये हैं— पर है यह 'अनामपद'। इस पद की प्राप्ति दुर्लभ है। कबीर साहब ने कहा है—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहो संतो क्यों पाइये, दुर्लभ हरि दीदार॥

नाद का अर्थ है ध्वनि। जहाँ गति है वहीं ध्वनि है। गति हो और ध्वनि नहीं, यह सर्वथा असम्भव है।

इसलिये 'शब्द ब्रह्म' की उपासना हमें शब्द के पार पहुँचा देती है। बाइबुल में लिखा है—

(In the beginning there was word and the word was with God) आरम्भ में शब्द हुआ और वह ईश्वर के द्वारा किया गया। शब्द से ही सृष्टि हुई। इसीलिये नाम जप पर जोर दिया है सभी संतों ने।

नामके सहारे अनाम पद तक पहुँचना होता है।

यही एकमात्र मार्ग है जिसका वर्णन शास्त्रों और संतवाणियों में हमें यथास्थल मिलता है। बार-बार देखने का प्रयोग इसीलिये किया गया है कि जिस आन्तरिक दृष्टिकोण से बिन्दु की प्रत्यक्षता होती है

वही एकमात्र सही दृष्टकोण है। इस मार्ग से चलकर आगे 'नादब्रह्म' की प्राप्ति का रास्ता मिलेगा। वह रास्ता एक है। दस-बीस नहीं।

हम मनुष्य हैं। हमें विचार करना चाहिये इन बातों पर। मार्ग की भिन्नता की सम्भावना ही नहीं है। पंथाई भावनाओं की गर्मी के कारण जो प्यासा भटक रहा है उसे यह मार्ग नहीं मिलेगा।

अंतिम निवेदन संत दादूदयाल जी महाराज के शब्दों में—

चर्म दृष्टि देखै बहुत, आतम दृष्टि एक।
ब्रह्म दृष्टि परचैभया, तब दादू बैठा देख॥

—०—

(पृष्ठ २ का शेषांश)

अर्जन, सांसारिक प्रबंध और राजनीति के साथ आध्यात्मिकता और आध्यात्मिक ज्ञान वा रूहानियत और इल्मे रूहानी कर दो। जब एखलाख वा सदाचार ऊचा होगा तब आत्मज्ञान में ऊँची गति यानी रूहानी तरक्की होगी। संसार में सदाचरण में वर्त्तते हुए परलोक में भी ठीक-ठीक कुशल से रहा जायगा। विषयी न तो सदाचरण में बरत सकता है और न आत्मोन्नति के पथ पर ही चल सकता है। इसीसे तुलसीकृत रामायण में। श्री राम का उपदेश है कि—

'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वगउ स्वल्प अन्त दुखदाई।'
'नर तन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं।'

एक बार रास्ते में जाते-जाते मुझको पंजवारा बाजार के कुछ बनिये महाशयों ने कहा– 'कुछ सुनाओ।' मैंने कहा— "समय नहीं है, थोड़े में सब सुन लो। 'राम राजा सकल परजा।' राम अब व्यक्त रूप में इस धरातल पर नहीं हैं किन्तु वे अव्यक्त रूप में तो अवश्य हैं। राजा का वचन मानो तो सुखी रहोगे, नहीं तो दुःखी होओगे। वह वचन है—

'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।'

स्वर्ग में भी लोग बराबर और समान रूप से सुखी नहीं रहते। कोई अल्प, कोई विशेष सुखी रहते हैं। श्रीराम कहते हैं, वहाँ भी सुख थोड़ा ही है और अंत में दुःख देनेवाला है। श्री राम प्रजा को विषय से विमुख करते हैं— विषय से दूसरी ओर ले जाते हैं। रूहानी की ओर ले जाने के लिये उन्होंने नसीहत दी कि जो हवासों में आने योग्य चीजें हैं, उनको छोड़ो। परवरदिगार को जानना चाहते हो तो हवासों के इल्म के आगे जाओ। विषय कितने हैं? रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द— ये पाँच हैं। ये आँखों से, जिह्वा से, नाक से, त्वचा से और कान से पकड़े या ग्रहण किये जाते हैं। विषय-सुख भोग में जो आराम मालूम होता है, उस आराम में रहना अच्छा नहीं। बहिश्त में भी बेचैनी लगी रहती है, यही श्री राम कहते हैं। वहाँ भी लड़ाइयाँ होती हैं। वहाँ और यहाँ में यही अंतर है कि वहाँ भोग-विलास की सामग्री अधिक है। इस शरीर के लिये तो यह कहा गया है कि—

'बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।'
'नर समान नहि कवनिउँ देही। जीव चराचर जाँचत जेही।'
(गो० तुलसी दास जी)

श्री राम ने कहा— विषय की ओर मत जाओ। इसका आशय क्या हुआ? निर्विषय की ओर जाओ। निर्विषय तत्त्व क्या है? जो हवासों में नहीं आता, जो पंच विषयों से परे है। उस ओर चलने के लिये श्री राम उपदेश देते हैं। इन्द्रियों की पकड़ में जो आवे, वह माया है।

'अन विचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी।'
नहीं विचार करो तो, संसार बहुत अच्छा है। यदि विचार करो तो, यह संसार बहुत भयंकर है। तब क्या करो? निर्विषय की ओर चलो। यदि कोई पूछे—

"निर्विषय की ओर चलना भक्ति है ?"

मैं कहूँगा— "हाँ, निर्विषय की ओर चलना ईश्वर की ओर चलना है। यही ईश्वर की भक्ति है। दूसरे कहते कि ईश्वर तुम्हारे पास है, फिर बुलाओगे किसको, जाओगे किसके पास ? तुलसी साहब के पास तकी नाम के कोई मुसलमान कुछ जिज्ञासा करने के लिये गये। तुलसी साहब ने उनसे कहा—

" सुन ऐ तकी न जाइयो जिनद्दार देखना ।
अपने में आप जलवए दिलदार देखना ॥"

फिर उसका रास्ता बताया—

"पुतली में तिल है तिल में भरा राजं कुल का कुल ।
इस परदये सियाह के जरा पार देखना ॥"

यदि काले परदे के पार में देखो तो क्या होगा ? तो कहा—

" चौदह तबक का हाल अयाँ हो तुझे जरूर ।
गाफिल न हो ख्याल से हुशियार देखना ॥ "

यहाँ के भक्तों से या दूसरे देश के भक्तों से पूछो सभी अन्तर में चलने के लिये कहते हैं। कितने मुझसे झगड़ते हैं कि ध्रुव और प्रह्लाद को क्या इन आँखों से भगवान के दर्शन नहीं हुए ? तो उत्तर में तुलसी-कृत रामायण में श्री राम के वचन निवेदित हैं—

" गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई ॥ "

क्या यह झूठ है ? देवी, काली, श्री राम, श्रीकृष्ण, शिव आदि अनेक रूपों में अनेक भगवान हैं या केवल एक ही भगवान सब रूपों में हैं ? रूप के दर्शन से केवल शरीर-रूप का दर्शन हुआ, परन्तु उन सब रूपों में जो एक ही है, उन आत्म रूप भगवान का दर्शन नहीं हुआ। किसी को चतुर्भुजी, किसी को दो भुजी रूप का दर्शन हुआ। गो० तुलसीदास जी को हनुमान जी सहायक थे। हनुमान जी से गो० तुलसीदास जी ने विनय किया कि मुझे भगवान का दर्शन कराइये। वहीं का यह दोहा है-

" चित्रकुट के घाट पर, भई सन्तन की भीर ।
तुलसीदास चन्दन रगड़े, तिलक देय रघुबीर ॥ "

गो० तुलसीदास जी ने तिलक लगाये, किन्तु उनको पहचान न सके। फिर घोड़े पर राजकुमार के रूप में दर्शन हुआ। किन्तु फिर भी पहचान न सके। तुलसीदास जी से पूछिये, उनका अपना लिखा क्या है, सो पढ़िये। उनका अन्तिम ग्रन्थ विनय पत्रिका है। उसमें लिखा है—

" यहिते मैं हरि ज्ञान गँवायो ।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहिं,
बाहेर फिरत विकल भय धायो ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मति हीन मरम नहीं पायो ।
खोजत गिरि तरू लता भूमि बिल,
परम सुगन्ध कहां ते आयो ॥
ज्यों सर विमल वारि परि पूरन,
ऊपर कछू संवार तृण छायो ।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ,
चाहत यहि विधि तृषा बुझायो ॥
व्यापित त्रिविध ताप तनु दारून,
तापर दुसह दरिद्र सतायो ।
अपने धाम नाम सुर तरू तजि,
विषय बबूर बाग मन लायो ॥
तुम्ह सम ज्ञान निधान, मोहि सम
मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय,
कीजै नाथ उचित मन भायो ॥ "

जब तक गोसाईं जी बाहर में भटकते रहे, तब तक वे उसी तरह भटकते रहे जिस तरह मृगा कस्तूरी के लिए भटकता है। जैसे कोई प्यासा जन किसी तालाव पर जाता है, वहां पानी के ऊपर तृण है, उस तृण को हटाये बिना ही पानी पीना चहता है। आशय है कि अपने अन्दर में आवरण हैं। जब तक इन आवरणों को नहीं हटाया जाय, तब तक परमात्म रूप निर्मल जल को कोई पी ही नहीं सकता। आवरण क्या है? इस पर कहा—

"माया बस मति मन्द अभागी।
हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं।
निज अज्ञान राम पर धरहीं॥"
"काम क्रोध मद लोभ रत, गृहा सक्त दुःख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप॥"

जबतक अन्धकार के कुएँ से नहीं निकलो, अन्दर के आवरणों का टूटना नहीं हो सकता। अनासक्त होकर घर में नहीं रहा जायगा तबतक ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। इसलिये अन्धकार के कुएँ से अपने को निकालो। जबतक सदाचार का पालन नहीं किया जाय, कभी गिर जाय, कभी पालन करे तो, तबतक वह फल बहुत दूर है। यह तो गो० तुलसीदास जी का वचन हुआ। कबीर साहब और गुरु नानक साहब के लिये तो मुझसे पूछना ही क्या है? लोग गो० तुलसी दास जी को समझते हैं कि वे केवल सगुणोपासना में लगे थे और कबीर साहब तथा गुरु नानक केवल निर्गुणवादी संत थे। आप उनके साहित्य को पढ़िये। केवल सुनी-सुनायी बातों से संतों के प्रति अश्रद्धा अपने लिये बहुत हानिकारक है। सूरदास, तुलसीदास, कबीर साहब सभी अन्दर की ओर ले जाते हैं।

ईश्वर का दर्शन इन्द्रियों से नहीं होता है। उपनिषद् के वाक्यों में भी ईश्वर को आत्मगम्य बताया गया है †। 'आतम गम्य भजहिं जेहि सन्ता।' इसी शरीर में जीवात्मा और परमात्मा हैं, फिर भेंट क्यों नहीं होती है; इसका कारण क्या है? माया और छाया के आवरण जो जीव पर हैं, वे जब तक नहीं हटें तबतक पहचान नहीं हो सकती। इस आवरण रूप का जहाँतक प्रसार है, वहाँ तक यह किस पर आवरण है? क्या पूर्ण परमात्मा माया के आवरणों में ढँका है? नहीं, वह माया के प्रसारों को भरकर और कितना विशेष है, कुछ पता नहीं ‡। उसका अंश रूप ही ढका है, पूर्ण रूप नहीं। यह अंश टूटा हुआ नहीं, बल्कि जैसे महदाकाश का अंश मठाकाश– जैसे एक ही आकाश ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है। यह आपके शरीर रूप आवरण के अन्दर भी है। उसी तरह परमात्मा आप के अन्दर है, किन्तु आप उसका दर्शन नहीं कर सकते हैं। क्योंकि आप इन्द्रियों के द्वारा ही कुछ जानते हैं और आप की इन्द्रियाँ स्थूल हैं। इन स्थूल इन्द्रियों से परमात्मा को कैसे पकड़ सकते हैं? स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। परमात्मा अनादि, अनन्त और असीम है। जो पदार्थ जितना विशेष व्यापक होता है वह उतना ही विशेष सूक्ष्म होता है। बर्फ, पानी और वाष्प की उपमा से बोध कीजिये। जो अनादि, अनन्त तत्त्व है, वह सबसे विशेष व्यापक

† नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥

‡ वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपोबभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च॥
कठोपनिषद्।

और विशेष सूक्ष्म है। जो विशेष सूक्ष्म होगा, वह सब में घुस सकता है। ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों को इन स्थूल हाथों से नहीं पकड़ा जा सकता। इसलिये वेदों में आया है कि परमात्मा इन्द्रियातीत है। वह चेतन-आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है। वह पकड़ा क्यों नहीं जाता है? कबीर साहब ने कहा है—

" सुरत फँसि संसार में, तातें पड़िगा दूर ।
सुरत बांधि सुस्थिर करो, आठो पहर हजूर ॥ "

अपने को इन्द्रियों से और शरीरों से बिना छुड़ाये, केवल बाहर-बाहर के भागने से, परमात्मा पकड़ा नहीं जा सकता। जाग्रत में इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में फँसती हैं। स्वप्न में अपने अन्दर जाते हुए पाते हो कि मैं अब सोता हूँ, तन्द्रा में बाहर से कुछ अचेतपन होता जाता है। उस समय गला झुक जाता है। इस समय शक्ति भीतर की ओर सिमटती है। जिभ्या पर मिठाई रहने से भी मीठा मालूम नहीं होता। बहिर्मुख से अन्तर्मुख होने पर बाहर के विषयों से छूटना होता है। इससे जानने में आता है कि बाहर से भीतर होने पर इन्द्रियों का विषयों से भी छूटना होता है। केवल स्थूल विषयों से ही नहीं, सूक्ष्म विषयों से भी छूटना होता है। इसी को कबीर साहब ने कहा है— 'साधो भक्ति सतो गुर आनी।' सतगुरु की भक्ति दूसरी ही है। इसी भक्ति का उपदेश गुरु महाराज करते थे। और मैंने जो सीखा है, उसी को मैंने आपलोगों के सामने रखा। अंतर में प्रवेश करने के लिये आप मानस जप और मानस ध्यान करके दृष्टि-योग और नादानुसंधान करो। दृष्टियोग में विन्दुध्यान होता है। यह विन्दु सूक्ष्म है, इसको मन से गढ़ा नहीं जाता। बिन्दु वह है जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। परिमाण रहित सूक्ष्तम पदार्थ को विन्दु कहते हैं। आपकी दृष्टि जहाँ सिमटकर रहेगी, वहीं बिन्दु उत्पन्न होता है। जहाँ बिन्दु है, वहीं नाद है।

"बिन्दु में तहँ नाद बोलै रैन दिवस सुहावनं। "
पलटू साहब।

" बिन्दु पीठ विनिर्भिद्य नादलिंगमुपस्थिम्। "
योग शिखोपनिषद्।

" बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरिस्थितम्। "
ध्यान बिन्दुपनिषद्।

मुसलमान भाइयों के लिये—

" सुन ला मकां पै पहुँच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा से सदा यार देखना ॥
मिलना तो यार का नहीं मुश्किल मगर तकी।
दुश्वार तो ये है कि है दुश्वार देखना ॥"
तुलसी साहब।

इसमें दृष्टि-साधन पर जोर दिया गया है। फिर कहा है—

" तुलसी बिना करम किसी मुर्शद रसीदा के।
राहे नजात दूर है बस पार देखना ॥
तुलसी साहब।

किन्तु पार देखना और पहुँचना बड़ा कठिन है—

" दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ॥ "
(महोपनिषद्)

अर्थात्, सद्गुरु की दया के बिना विषय-त्याग दुर्लभ है, तत्त्व दर्शन दुर्लभ है और सहजावस्था दुर्लभ है।

श्री रामचरित मानस में भगवान श्रीराम ने परम भक्तिन साधिका सुश्री शबरी जी के प्रति जो नवधा भक्ति का कथन किया है, उसमें "गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान" का कथन करके, अन्त में सुश्री शबरी जी को कहा है कि— "सकल प्रकार भगति दृढ़

तोरे।" इससे विदित होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों के वास्ते उपर्युक्त नवधा भक्ति की विधि से भक्ति का साधन है। यह प्रसिद्ध है कि सुश्री शवरी जी मातङ्ग मुनि की शिष्या थीं। सुश्री मीराबाई का यह शब्द है—

"मीरा मन मानी, सुरत सैल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब सुरत लगे वा घर की पलपल नयन न पानी।
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रैनि दिवस मोहि निन्द न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी॥
ऐसा बैद मिले कोई भेदी, देस विदेस पिछानी।
तासों पीर कहौं तन केरी, फिर नहीं भरमो खानी॥
खोजत फिरौं भेद वा घर की, कोइ न करत बखानी।
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीना सुरत सहदानी॥
मैं मिल जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी।
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥"

यह शब्द सुश्री मीरा बाई जी के गुरु का पता बताता है।

सुश्री सहजो बाई तथा सुश्री दया बाई के गुरु श्री चरण दास जी महाराज थे। उनकी वाणियों को पढ़कर देख लीजिये —

चरणदास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारम्बारा।
चरण दास सों किरपा सहजो, भरम करम भया छारा॥"

शिक्षा और दीक्षा सभी को चाहिये, परन्तु कान फूँकना कोई दीक्षा-दीक्षा नहीं और न अध्यात्म-पथ में इसका कोई अर्थ है। रामकृष्ण परमहंस देव जी की शिष्या रानी रासमणि थीं। सिस्टर निवेदिता श्री स्वामी विवेकानन्द जी की शिष्या थीं। पाण्डिचेरी की 'श्री माँ' योगी श्री अरविन्द जी की शिष्या हैं। महर्षि रमण की शिष्याए अभी भी हैं। श्री समर्थ राम दास जी महाराज (श्री छत्रपति शिवाजी राव के गुरु) की भी शिष्याएँ थीं। भगवान बुद्ध, कबीर साहब, गुरु नानक साहब आदि सन्तों की भी शिष्याएँ थीं। जिससे विदित होता है कि स्त्रियों के वास्ते पतिसेवा और पातिव्रत धर्म-पालन सहित अध्यात्म-धर्म (मोक्ष-धर्म) के पालन-पथ में योग्य गुरु से शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है। तभी तो भक्तवर श्री जयदयाल गोयन्दका महाराज जी भी अपने परमार्थ पत्रावली में गुरुमंत्र जप † करने को कहते हैं और केवल महिलाओं के समाज में भी बैठकर उन्हें शिक्षा देते हैं। जब भगवान् श्री राम ही स्त्री-पुरुष सभी के लिये गुरु-सेवा की विधि त्रेता युग के प्राचीनकाल में ही दे गये हैं, तब सन्त लोगों का स्त्रियों को शिक्षा - दीक्षा देना, भगवान के उपदेश के अनुकूल ही है और युक्ति-संगत भी है। यदि स्त्री के स्वयं पति ही, योगीवर भूपेन्द्रनाथ सन्याल के सदृश, अध्यात्म पथ के पथिक हों तो स्त्री अपने पति के द्वारा ही वह पथ पा सकती है, उसको दूसरे गुरु की आवश्यक नहीं है। क्योंकि जो विद्या और गुण जिसमें हो, उसके द्वारा वह विद्या और गुण दूसरे को मिले, यह पूर्णतया सम्भव है। परन्तु इसके विरुद्ध, अर्थात्, जो विद्या और गुण जिसमें नहीं हो, वह विद्या और गुण उसके द्वारा किसी को मिले, असम्भव है। पत्नी को पति का गुण, स्वभाव, पवित्रता और अपवित्रता का ज्ञान भली-भाँति अवश्यमेव होता है। तदनुकूल पति में वह अपनी श्रद्धा अवश्य रखेगी। इसके अतिरिक्त किसी दबाव से पवित्रता के हेतु उसकी श्रद्धा अपने पति में हो, यह सम्भव नहीं जँचता। किसी भी अध्यात्म पथ के गुरु में उसको पवित्रता, ज्ञान और

† कल्याण, दिसम्बर '५५, पृष्ठ १४५७।

कर्म के कारण ही उसमें श्रद्धा हो सकती है। नहीं तो–

"गुरु शिष्य अन्ध बधिर कर लेखा।
एक न सुनइ, एक नहिं देखा॥
हरइ शिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महँ परई॥"

"गर्वित कार्य अकार्य नहिं, जानत चलत कुपन्थ।
ऐसे गुरु कहँ त्यागिए, यही कहत शुभ ग्रन्थ॥"

"ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम्।
अतोयोज्ञानदानेहि न क्षमस्तं त्यजेद्गुरुम्॥"

अर्थात्, ज्ञान से मोक्ष होता हैं, इसलिये ज्ञानसे बढ़कर दूसरा उपदेश नहीं हैं। इसीलिये जो गुरु ज्ञानदान में समर्थ नहीं है ऐसे गुरु को छोड़ देना चाहिये।

(वृहत्तन्त्रसार)

ऐसे गुरु का संग सर्वथा अनुचित है।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै शब्द का, भटकै बारम्बार॥"

मीराबाई जी को कतिपय लोग केवल मोटी भक्ति की उपासिका ही समझते हैं, परन्तु उनके जो शब्द पहले कहे गये हैं उससे और फिर निम्नलिखित शब्दों से—

"ऊँची अटरिया, लाल किवड़िया, निरगुन सेज बिछी॥"
पंचरंगी झालर शुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बांजूबन्द कडूला सोहै, मांग सिन्दूर भरी॥"
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, शोभा अधिक भली।
सेज सुखमना मीरा सोवै, शुभ है आज घड़ी॥

विदित होता है कि वह योग्य गुरु सन्त रविदास जी की कृपा से अन्तरमार्ग की योग-सम्बन्धी साधनाओं को भी करती थीं। अर्थात्, वह सूक्ष्म उपासना में भी अच्छी गति रखती थीं। यह विख्यात नहीं है कि वह केवल पति की ही उपासना किया करती थीं। अध्यात्म-पथ में पुरुष और स्त्री सब को बराबर अधिकार है। स्त्रियों में भी योग्यता विशेष की साधिकाएँ हुई हैं और अब भी जहाँ-तहाँ हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस देव जी को तांत्रिक शिक्षा-दीक्षा एक भैरवी ब्राह्मणी से मिली थी, यह प्रसिद्ध है। तंत्र-शास्त्र में स्त्रियों के लिये पति के अतिरिक्त शुद्धाचरण युक्त अध्यात्म-पथ के योग्य गुरु से दीक्षित होने की तथा ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था तो है ही, साथ ही साथ तुलसीकृत रामायण के अनुकूल श्री राम का भी उपदेश ऐसा ही है। गो० तुलसीदास जी महाराज तो यहाँतक कह देते हैं कि—

'बिन गुरु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई।

वस्त्र-हरण के समय महारानी द्रौपदी की करुण पुकार पर, भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से, उनका वस्त्र बढ़ा था, लोगों में यह विख्यात है। इसी हेतु उन्हें भी बहुत लोग भक्तिन मानते हैं। महाभारत आदि पर्व के पढ़ने से विदित होता है कि पति के लिये उसने कई जन्मों तक तपस्या की थी। एक जन्म के उनके तप के अवसर पर धर्म, इन्द्र, पवन और युगल अश्विनी कुमार देवों के दर्शन से पति-रूप में उसने उन पाँचों को मानस और मौन इच्छा से वरण किया था। उन पाँचों ने उनकी इच्छा पूर्ण करने के वरदान दिये थे। पांडवों ने जब द्रौपदी के पिता द्रुपदराज के सामने, 'हम पाँचों भाई द्रौपदी से विवाह करेंगे'– यह कहा था, तब राजा द्रुपद और उनके पुत्र धृष्टद्युम्न दोनों ने मिलकर इसका प्रतिवाद भी किया था, परन्तु, द्रौपदी ने भी इसका कुछ प्रतिवाद किया था क्या? ऐसा महाभारत में कहीं भी नहीं लिखा है। महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि अपने पाँचों पतियों और भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति में द्रौपदी ने अपने मन की सच्ची बात नहीं (शेषांश पृष्ठ २६ पर)

पूज्य स्वामी मेंहीं दास कृत

ईशस्तुति और नाम संकीर्त्तन की व्याख्या

व्याख्याकार— महावीर 'संतसेवी'

व्याख्याकार के दो शब्द

बहुत दिनों से सत्संग-प्रेमियों का आग्रह था कि परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी मेंहीं दास जी महाराज कृत 'ईश-स्तुति' तथा 'नाम संकीर्त्तन' की व्याख्या प्रकाशित हो।

समयाभाव के कारण इन आग्रहों की रक्षा अबतक नहीं हो सकी थी। किन्तु इधर इन आग्रहों का दबाव इतना अधिक हो गया कि इन्हें बिना प्रकाशित किये रहा नहीं गया।

उक्त कार्य के लिये पूज्य श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा मिलने पर दोनों पदों की व्याख्या मैंने लिखी और उन्हें दिखलायी भी। उन्होंने इन्हें प्रकाशित करवाने की आज्ञा दी और अब ये आपके समक्ष हैं।

आशा है सत्संग-प्रेमी गण इन्हें अपनाकर लाभ उठावेंगे।

गुरुचरण सरोज कृपाभिलाषी
महावीर 'सन्तसेवी'

ईश-स्तुति

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में।
निर्गुण सगुण के पार में सत् असत हू के पार में॥ १॥
सब नाम रूप के पार में मन बुद्धि वच के पार में।
गो गुण विषय पँच पार में गति भाँति के हू पार में॥ २॥
सूरत निरत के पार में सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में।
आहत अनाहत पार में सारे प्रपञ्चन्ह पार में॥ ३॥
सापेक्षता के पार में त्रिपुटी कुटी के पार में।
सब कर्म काल के पार में सारे जञ्जालन्ह पार में॥ ४॥
अद्वय अनामय अमलअति आधेयता गुण पार में।
सत्ता स्वरूप अपार सर्वाधार मैं तू पार में॥ ५॥
पुनि ओम् सोहम् पार में अरु सच्चिदानन्द पार में।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो पुनि व्याप्य व्यापक पार में॥६॥
हैं हिरण्यगर्भहु खर्व जासों जो हैं सान्तन्ह पार में।
सर्वेश हैं अखिलेश हैं विश्वेश हैं सब पार में॥ ७॥

सत् शब्द धर कर चल मिलन आवरण सारे पार में ।
सद्गुरु करुणाकर तर ठहर धर 'मेंहीं' जावैं पार में ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— क्षेत्र = शरीर । क्षर = नाशवान । अपरा = अपरा प्रकृति । परा = परा प्रकृति । अक्षर = अनाश । भगवद्गीता के अनुकूल तीन पुरुष हैं— क्षर-पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम । (दे० गीता अध्याय १५, श्लोक १६ और १७ ।)

सत् = अपरिवर्त्तनशील पदार्थ, परा प्रकृति, अक्षर पुरुष, निर्गुण । असत् = अपरिवर्त्तनशील पदार्थ, अपरा प्रकृति, क्षर पुरुष, सगुण । सापेक्षता = ऐसे दो शब्द जो अत्यन्त सम्बन्धित हों परन्तु उनके अर्थ एक दूसरे के विपरीत हों । जैसे दिन-रात, अच्छा-बुरा, हर्ष-शोक आदि । इस तरह के शब्दों से नहीं वर्णित होने योग्य गुण वाले, 'सापेक्षता' के पार में कहलाते हैं । त्रिपुटी = अत्यन्त सम्बन्धित तीन-तीन शब्द । जैसे— भक्ति-भक्त-भगवन्त, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय इत्यादि । कुटी = स्थान । त्रिपुटी कुटी = त्रिपुटी सम्बन्धित स्थान । आधेयता = अवलम्बित रहने का गुण । ओम् = अनाहत आदिनाद, प्रणवध्वनि, सत् शब्द । सोहम् = वह शब्द जिसके मिलने से परमात्मा और अपने में एक तत्त्व होने का ज्ञान होता है । व्यापक = सब में प्रविष्ट और फैलकर रहनेवाला । व्याप्य = जिसमें व्यापक हुआ जाय— प्रकृति । हिरण्यगर्भ = ज्योतिर्मय ब्रह्म, व्यावहारिक सत्ता, ब्रह्मा ।

पद्यार्थ—जो सब शरीरों यानी स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य (जड़ विहीन चेतन), सभी नाशवानों, अपरा प्रकृति— निम्नकोटि की प्रकृति— परिवर्त्तनशील दशावाली जड़ प्रकृति- असत्, परा प्रकृति—उच्च कोटि की प्रकृति— अपरिवर्त्तनशील † दशावाली जीव रूपा ‡ चेतन प्रकृति— सत्; इन उभय प्रकृतियों और परिवर्त्तन शील दशा रहित अनाश तत्त्व के परे है । जो त्रिगुण रहित— परा प्रकृति तथा त्रिगुण सहित— अपरा प्रकृति के परे और सत्-असत् के भी परे है । १ । जो समस्त नाम-रूपों के परे, मन, बुद्धि और वचन के परे है, जो पंचेन्द्रियों और पंच विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द) के परे है, चलने वा हिलने-डोलने और किसी प्रकार में कहे जाने के भी परे है । । २ । जो सुरत की संलग्नता के परे है, सभी द्वैत (प्रपंच) के झगड़ों के परे है, जो ठोकर से और बिना ठोकर से होनेवाले शब्दों के परे और सारी सृष्टि के परे हैं । ३ । जो सापेक्षता और त्रिपुटी स्थान के परे है, जो सब कर्म और समय के परे है और सभी उलझाव-झंझटों के परे है । ४ । जो अद्वितीय, रोग रहित, अत्यन्त पवित्र और अवलम्बित रहने के गुण के परे है, जो स्वरूप से स्थितिवान्, असीम, सब के आधार और मैं-तू के परे है । ५ । पुनः जो ओम्-सोहम् के परे है और सच्चिदानन्द ब्रह्म * के परे है, जो अनन्त, व्यापक और व्याप्य है, फिर व्याप्य और व्यापक के परे भी है । ६ । जिससे हिरण्यगर्भ— ज्योतिर्ब्रह्म भी निम्नकोटि का है, जो अन्त सहितों के परे है, (वेही) सबके ईश्वर-प्रभु, सम्पूर्ण जगदादि के ईश्वर, विश्व के

† महाभारत शान्ति पर्व, उत्तरार्द्ध मोक्ष धर्म अध्याय १०४ ।

‡ श्री मद्भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ५ ।

* सच्चिदानंद ब्रह्म और व्यावहारिक सत्ता के विषय में लोकमान्य गंगाधर तिलक महोदय कृत गीता- रहस्य पृ० २११ तथा 'कल्याण' वेदान्त अंक सं० १९९३ पृ० १८७ में देखिये और सत्संग योग भाग—२ पृ० १३५ में और भाग ३ पृष्ठ १३ में भी देखिये ।

स्वामी सबके परे हैं । ७ । स्वामी श्री मेंहीं दास जी महाराज कहते हैं कि उस परम प्रभु सर्वेश्वर से मिलने के लिये, सत शब्द यानी चेतन शब्द– प्रणवध्वनि को ग्रहण कर (स्थूल-सूक्ष्मादि) सारे (मायिक) आवरणों के पार में उस प्रभु से मिलने को चलो । सद्गुरु के दयामय हस्त के नीचे ठहर कर और उसे धरकर या उसका सहारा लेकर कथित सब आवरणों के पार में जाओगे । ८ ।

नाम संकीर्त्तन

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदि मूल परमातम जो ।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिये स्फोट है सो ॥ १ ॥
है स्फोट वही उदगीथ वही, ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म ओम् वही ।
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही, है परमातम परतीक वही ॥ २ ॥
प्रभुका ध्वन्यात्मक नाम वही, है सार शब्द सत्शब्द वही ।
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों में व्यापक नाम वही ॥ ३ ॥
है सर्व व्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ।
है परम प्रचण्डिनि शक्ति वही, है शिव शंकर हरनाम वही ॥ ४ ॥
पुनि राम नाम है अगुण वही, है अकथ अगम पूर्ण काम वही ।
स्वर व्यञ्जन रहित अघोष वही, चेतन ध्वनि सिंधु अदोष वही ॥ ५ ॥
है एक ॐ सत्नाम वही, ऋषि सेवित प्रभु का नाम वही ।
मुनि गुरु
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम वही, भजो ॐ ॐ 'मेंहीं' नाम वही ॥६॥

पदार्थ— जो परमात्मा इन्द्रियों को अप्रत्यक्ष, आदि अन्त रहित, अजीत, अजन्मा और सारी सृष्टि का आदि मूल है ; उस (परमात्मा) से जो धारा सर्वप्रथम प्रस्फुटित हुई यानी फूटकर निकली, उस— अपरा– जड़ प्रकृति से— श्रेष्ठ धारा को स्फोट कहते हैं । १ । वही स्फोट है, वही उद्‌गीथ* है, वही ब्रह्मध्वनि, शब्द-ब्रह्म और ओ३म् भी वही है । वही अत्यन्त मीठी सुरीली प्रणवध्वनि की धारा है और वही परमात्मा की प्रतिमूर्त्ति है ॥ २ ॥ वही परम प्रभु सर्वेश्वर का ध्वन्यात्मक नाम, सार शब्द और सत शब्द है । वह सत् चेतन, अप्रत्यक्ष (इन्द्रियों से नहीं जानने योग्य) है और वही सब इन्द्रियों से जानने योग्य पदार्थों में व्यापक (प्रभु) नाम है । ३ । वही सब में रमण करने वाली सर्वव्यापिनी रामध्वनि है तथा वही सबको

* उद्‌गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिन्स्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनि मुक्ताः ।
७ ॥ श्वेताश्वरोपनिषद्, अ० १ ।

अर्थ— उद्‌गीत (उद्‌गीथ) (अर्थात् ॐ) परब्रह्म है । उसमें तीन सुप्रतिष्ठित अक्षर (अ, उ, म) हैं । ब्रह्मज्ञानी लोग भीतरी हालत (रहस्य या गुप्त भेद) जानकर ब्रह्म में लीन होते हैं । (अर्थात्, ॐ— उद्‌गीत में लीन हो जाते हैं) ।

आकृष्ट करनेवाला हरि और कृष्ण नाम है। वही परम प्रचण्डिनी शक्ति है; कल्याणकारक, क्लेशों को हरनेवाला नाम भी वही है ॥ ४ ॥ फिर निर्गुण रामनाम भी वही है और अनिर्वचनीय, बुद्धि के परे, सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला नाम है। वही स्वर व्यञ्जन विहीन, घोषित नहीं किये जाने योग्य है† और वही निर्दोष— दोष रहित चेतन ध्वनि का समुद्र है ॥ ५ ॥ वही एक ओम् सत् नाम है और वही ऋषियों द्वारा सेवित प्रभु का नाम है। स्वामी श्री मेंहीं दास जी महाराज कहते हैं कि यही ओ३म् शब्द प्रभु का नाम है, इसी का भजन करो ॥ ६ ॥

† अघोषम् अव्यञ्जनं अस्वरं च अकण्ठ ताल्वोष्टम् अनासिकं च। अरेफ जातम् उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित् ॥ अमृतनादोपनिषद्।

ओ३म्, स्फोट वा उद्गीथ के विषय में सत्संग योग (द्वितीय संस्करण) भाग– २, पृष्ठ १७२ में स्वामी विवेकानन्द जी महाराज के तथा भाग ३ पृष्ठ २६ में स्वामी भूमानन्द जी महाराज के वचन पढ़कर देखिये।

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

बतलाई— झूठी बात कही थी। जब अर्जुन ने उसे प्राण-दण्ड देने की धमकी दी, तब उसने अपने दिल की सच्ची बात कही थी। वह अपने मन में वीर कर्ण को भी पति रूप में पा जाती, यह स्मरण करती रहती थी। इस गोपनीय विषय को जानकर वीरवर भीमसेन ने उसको बहुत फटकारा था और उसकी बड़ी भर्त्सना की थी। महाभारत (स्वर्गारोहण पर्व्व) में लिखा है कि पांडवों के महाप्रस्थान के समय वह भी पाँचों भाई पांडवों के साथ-साथ चलती थी। वह उन सब के पीछे-पीछे चलती थी। उस पहाड़ी यात्रा में पहले द्रौपदी गिरकर परलोक सिधार गयी। उस समय भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि यह इस तरह क्यों गिर गयी? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि 'यद्यपि हम पाँचों भाई द्रौपदी के लिये समान थे, परन्तु यह अर्जुन का पक्षपात बहुत करती थी। इसीलिये यह इस तरह गिर गई।' परलोक में उन्हें पहले नरक की यातना देखनी पड़ी। फिर वह स्वर्ग की लक्ष्मी होकर विराजी। †

द्रौपदी के विषय में उपर्युक्त बातों की जानकारी के बाद, विद्वान् एवं बुद्धिमान् स्वयं विचारें कि द्रौपदी की पातिव्रत विषयक एवं परमात्म-भक्ति विषयक योग्यता कितनी और कैसी थी तथा अन्य स्त्रियों को उसका अनुकरण करना चाहिये या नहीं?

रामचरित मानस में सुश्री अनुसूया देवी ने सुश्री सीता जी को पातिव्रत धर्म की शिक्षा इस प्रकार दी थी—

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म विचारि समझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानहु अधम नारि जग सोई॥

उपर्युक्त विवेचन के अनुकूल बुद्धिमान स्वयं ही विचार सकते हैं कि द्रौपदी अपने यथाकथित विवरणानुकूल, किस कोटि की नारि कही जा सकती है?

(क्रमशः)

† यह स्वर्ग में रहने का पद आवागमन में रहने का पद है। 'स्वर्गहु स्वल्प अंत दुखदाई।' परन्तु, शबरी को प्राप्त पद हरिपद में लीन होने का है; जहाँ से फिर आवागमन के चक्र में नहीं आना पड़ता है। परमात्म-भक्ति में पूर्णता प्राप्त करनेवाले साधक को यही पद मिलता है।

सम्पादक की कलम से—

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् !

धर्म का तत्त्व गहराई में निहित है। धर्म का सार तत्त्व गहराई में उतरने पर ही प्राप्त होता है।

इसलिये जो केवल स्थूल उपासना के द्वारा ही धर्म का मूल तत्त्व ग्रहण करना चाहते हैं वे भूल में हैं। जितना शीघ्र मनुष्य इस भ्रम से मुक्त होगा उतना ही उसका भला होगा।

गहराई में उतरनेवालों की वाणी यही सिद्ध करती है कि सत्य एक है, केवल कहने की शैली में भिन्नता है।

सभी सन्तों की बात एक ही है। उनके उपदेशों का उद्देश्य भी एक ही है।

वह कौन-सी गहराई है, जिसमें उतरने पर धर्म के सार तत्त्व की उपलब्धि होगी ?

बाइबिल (ईसाइयों का धर्म-ग्रन्थ) में लिखा है— जो खोजेगा वह पायगा।

कबीर साहब ने लिखा है— 'जिन ढूढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।' खोजनेवाले को गहरे पानी में डूबना पड़ता है।

वही गहराई में जा सकेगा जो सदाचारी है। नानक साहब के अनुसार— 'सूचै भाड़ै साँचु समावै।' –पवित्र प्रात्र में ही सत्य समा सकता है।

इसीलिये कलियुग के अदि संत भगवान बुद्ध का प्रचार था—पंचशील का पालन करो।

सदाचार का पालन करते हुए सद्गुरु की तलाश में रहना चाहिये।

गुरु जो मार्ग बतावें उसपर चलना चाहिये। क्योंकि— 'कहत बनाय दीप की बातें, ऐसे हो तम नासत।' दीप ! दीप !!— चिल्लाने से तो अन्धकार नष्ट नहीं होता हैं। उसके लिये ठोस कार्य करना होगा। कर्म की ऐसी कुशलता चाहिये, जो बन्धन से मुक्त करवा देने में सक्षम हो।

कुशलतापूर्वक अपने अन्तरतम की गहराइयों में उतर कर, गुरु द्वारा कृपा पूर्वक दी गयी दृष्टि से ही सार तत्त्व का ग्रहण किया जा सकता है।

इसीलिये कहा गया है— 'चाम चश्म सो नजरि न आवै, खोज रूह की नैना।' इन आँखों से तो जो कुछ भी देखा जाता है, वह माया है।

आत्मदृष्टि के द्वारा ही सत्य (धर्म का सार तत्त्व, अर्थात्, ईश्वर) नजर में आने योग्य है।

आत्मदृष्टिवान् सर्वत्र एक ही देखाता है। दादू दयाल जी के शब्दों में— "चर्म दृष्टि देखै बहुत, आतम दृष्टि एक।"

—

रजिस्टर्ड न० पी० ७२६ ।

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

अखिल भारतीय संतमत सत्संग का ५०वाँ वार्षिक अधिवेशन

भक्ति-संदेश

चौ०— सत्संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंडभरि एकउ वारा ॥

दो०— तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरियतुला इक अंग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥

बिहार राज्य के संथाल परगना (दुमका) मंडलान्तर्गत ग्राम ढोंढरी में दिनाङ्क ९, १० तथा ११ फरवरी सन् १९५८ ई० तदनुसार फाल्गुन कृष्ण पक्ष ६, ७ तथा ८ (षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी) रविवार, सोमवार और मंगलवार को होगा ।

परम पूज्य संत श्री मेंही दास जी महाराज जी के ईश्वर-भक्ति सम्बन्धी प्रवचन होंगे । हिन्दी, बंगला तथा भारतीय भाषा के कीर्त्तन भजनादि के अतिरिक्त अन्य महात्माओं तथा विद्वानों के उपदेश होंगे । अस्तु, सभी धर्मावलम्बीगण (चाहे वे वैदिक, इसलाम, सिक्ख, इसाई, बौद्ध, जैन, पारसी आदि किसी भी धर्म के हों) सत्संग में सम्मिलित होकर उनके उपदेशों से लाभ उठावें ।

प्रातः— ६ बजे दिन से ९ बजे तक } आध्यात्मिक भजन, सद्ग्रन्थों का पाठ
मध्याह्नः— २॥ बजे दिन से ६ बजे तक } एवं व्याख्यान ।

कार्य-क्रम :—दिनाङ्क ९, १० तथा ११ फरवरी, १९५८ ई०

दिनाङ्क—१० फरवरी सोमवार रात्रि ८ बजे से ९॥ बजे तक, अखिल भारतीय संतमत सत्संग महासभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक ।

दिनाङ्क— ११फरवरी, मङ्गलवार रात्रि ८ बजे से १० बजे तक अगले वर्ष के लिये वार्षिक अधिवेशन एवं विशेषाधिवेशन के निमंत्रण की स्वीकृति सत्संग एवं आगत सज्जनों और प्रबन्धकों को धन्यवाद ज्ञापन ।

नोटः— विशेष सूचनाएँ— (१)सत्संग-स्थल भागलपुर से पूरब-दक्षिण ४० मीलों की दूरी पर, बाराहाट से पूरब १० मीलों की दूरी पर, पंजवारा बाजार से ४ मील उत्तर तथा डुमरिया एवं लोकबंधा से २ मील उत्तर-पश्चिम की ओर है । (२) पंजवारा रोड (स्टेशन, ई० आर० रेलवे, बाँसी ब्रांच) से पूरब की ओर, १० मीलों की दूरी पर है । इसलिये आप सज्जनों से निवेदन है कि बस द्वारा आप लोग डुमरिया अथवा लोकबन्धामें ही उतरें । (३) यदि आप सत्संग से लाभ उठाना चहते हैं तो कार्यक्रम के आरम्भ होने के एक दिन पूर्व ही सत्संग में पधारने की कृपा करें । (४) डुमरिया तथा लोकबन्धा ग्रामों के उचित स्थानों पर आपलोगों की सहायता के लिये सत्संग-सेवक उपस्थित रहेंगे ।

श्री चन्द्रधर प्रसाद नन्दक्यूलियार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा अनोमाप्रेस, भागलपुर में मुद्रित ।